

# जिन्हें जन्नतें पुकारती हैं !

## मुसलमानों की सरज़मीनों की सुरक्षा का क़ानून !

नम्बर	मज़मून का नाम	पेज नं.
1.	पहली बात	3
2.	तक़रीज़ात	4
3.	मौलाना शैर अली शाह अलमदनी	5
4.	मौलाना अल्ताफ़ुर्रहमान बनवी	7
5.	मौलाना हाफ़िज़ साजिद अनवर	11
6.	फतवे की ताईद में आलमे-इस्लाम के बाज़ दिगर उल्मा की राय	14
7.	कुछ साहिबे-किताब के बारे में	17
8.	मुकद्दमा-ए-किताब	19
9.	बाब अव्वल	22
10.	हमलावर दुश्मन को मुसलमानों की सरज़मीन से निकालना अहमतररीन फ़र्ज़ ज़मीन की इस्लाह का दारोमदार क़ानूने-दिफ़ाअ पर रखा गया है।	23
11.	जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की ईमारत के दो बुनियादी सुतून	24
12.	दो बदतररीन सिफ़ात	25
13.	जिहाद, एक फ़रीज़ा-ए-गुमग़श्ता	26
14.	जिहाद की तअरीफ़	27
15.	दुश्मन के हमले की सूरत में, दिफ़ाई जिहाद वक़््त का अहमतररीन फ़र्ज़ होता है।	37
16.	जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की दो अक़््साम	43
17.	दिफ़ाई जिहाद (जिहादुद्दिफ़ाअ) और उसका शरई हुक्म	44
18.	जब कुफ़्फ़ार मुसलमानों के किसी इलाक़े में घुस आएँ।	44
19.	मसला-ए-ज़ेरे-बहस में, चारों इमामों की राय	46
20.	बाब-दोम	48
21.	नफ़ीरे-आम (सबके निकलने) के दलाईल	48
22.	निकलो, चाहे हल्के हो या बोझल	50
23.	तुम सब उन सबसे लड़ो।	50
24.	फितने के ख़ात्मे तक जिहाद फ़र्ज़ है।	50
25.	जब भी जिहाद के लिए निकलने का तक्काज़ा हो।	51
26.	ज़रूरियाते-ख़म्सा की हिफ़ाज़त फ़र्ज़ है।	51
27.	कुफ़्फ़ार मुसलमान कैदियों को ढ़ाल बना लें, तब भी लड़ा जाएगा।	53
28.	क्या बागी काफ़िर मुमालिक के ख़िलाफ़ क़िताल, मुस्लिम बाग़ियों के ख़िलाफ़ जंग से बढ़कर नहीं ?	54
29.	क्या ग़ासिब मुमालिक के ख़िलाफ़ क़िताल, मुहारबीन (फ़सादी लोगों) के ख़िलाफ़ क़िताल से कहीं बढ़कर फ़र्ज़ नहीं ?	54
30.	बाब-सोम	56
31.	मौजूदा हालात में फ़िलिस्तीन और अफ़ग़ानिस्तान में जारी क़िताल का शरई हुक्म	57
32.	अफ़ग़ानिस्तान ही से आगाज़ क्यों ?	57
33.	अफ़ग़ानिस्तान में इस वक़््त मैदान गरम हो चुका है।	57



नम्बर	मज़मून का नाम	पेज नं.
32.	इस जिहाद का हदफ अल्लाह के कलमे की सरबुलन्दी के सिवा कुछ नहीं ।	58
33.	अफ़ग़ानिस्तान में मअरके की क़यादत बुनियादी तौर पर इस्लामपसन्दों ने संभाल रखी है	58
34.	जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान तागूतों के ताबेअ नहीं ।	58
35.	अगर मुख्तलिफ तरह के दुश्मनों से साबिका हो तो इमाम को ख़तरनाक-तरीन से क़िताल का आग़ाज करना चाहिए ।	59
36.	ये पहाड़ और उसमें बसने वाले लोग ।	60
37.	बाब-चहारूम फ़र्जे-ऐन और फ़र्जे-किफ़ाया	61
38.	महज़ हल्की फुल्की मज़ाहिमत (प्रतिरोध) से फर्जियत की अदायगी नहीं हो जाती	61
39.	बाब-पन्जुम जिहाद के लिए इजाज़त लेना कब ज़रूरी है ?	64
40.	फ़र्जे-किफ़ाया और फ़र्जे-ऐन की मिसाल	65
41.	शैख, उस्ताद या मुरब्बी से इजाज़त का मसला	66
42.	काफ़िर मुमालिक जाने पर क्यों ऐतराज़ नहीं किया जाता ?	67
43.	बाब-शशुम जिहाद बिलमाल की फर्जियत	69
44.	जिहाद-बिल-माल भी फ़र्जे-ऐन हो जाता है ।	70
45.	एक तरफ़ कहतज़गान, दूसरी तरफ जिहाद की ज़रूरियात	70
46.	अगर मालदार लोग महज़ अपने एक दिन का खर्च अफ़ग़ान मुजाहिदीन को दें दें ।	71
47.	खुलासा-ए-बहस	72
48.	बाब-हफ़्तुम आज जिहाद की फर्जियत नमाज़, रोज़े की मानिन्द, बल्कि उनसे भी बढ़कर है	73
49.	दिफ़ाई जिहाद के अहमतररीन फ़र्जे-ऐन होने के दलाइल	74
50.	फ़र्जे-ऐन में इजाज़त लेने या देने का सवाल ही नहीं ।	74
51.	तर्के-जिहाद का हुक्म देना खालिके-कायनात की नाफरमानी है ।	75
52.	इजाज़त का मामला	77
53.	जब तक मुजाहिदीन की तादाद नाकाफी हो, इजाज़त मांगने का सवाल ही पैदा नहीं होता	78
54.	क्या नफ़ीरे-आम के हुक्म की अमली तल्बीक आज के हालात में भी मुमकिन है?	79
55.	क्या हम उन हालात में भी कुफ़्रार के खिलाफ जिहाद करें जबकि मुसलमानों के पास कोई एक मुतफ़्का अमीर या ख़लीफा नहीं है?	80
56.	क्या हम अफ़ग़ानिस्तान के क़िताल में शरीक हों हालांकि, मुजाहिदीन मुख्तलिफ गिरोह और क़यादतों में बंटे हुए हैं ?	84
57.	अगर सब लोग जिहाद छोड़ बैठें तो क्या एक मुसलमान तन्हा ही क़िताल करे?	84
58.	क्या हम ऐसे मुसलमानों के साथ भी मिलकर क़िताल करें जिनकी दीनी तर्बियत नाक़िस (अधूरी) है ?	87
59.	क्या हमारे लिए कमज़ोरी के आलम में कुफ़्रार से मदद तलब करना जाइज है ?	89
60.	मसला, जेरे-बहस में मज़ाहिबे-अरबाअ की राय	91
61.	कुफ़्रार से मुआहिदात (समझौते)	92
62.	कुफ़्रार से मुआहिदा करने की शराइत	96
63.	बाबे-इख़ितताम	104
64.	हक़ को पहचानने के लिए ईमानी बसीरत दरकार है	107
65.	आखिरी बात	110
66.	वसीयत, शैख अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह.	111



## ✧ पहली बात ✧

उम्मत-मुस्लिमा आज उदास है, मग़मूम (ग़मज़दा) है! ग़ैरों के सितम का तो शिकवा ही बेजा है कि वो ग़ैर ठहरे, लेकिन अगर अपने भी मरहम रखने से कतराने लगें तो फिर जिगर के ज़ख़म किसे दिखाए जाएं? माना कि मुबशिरात के ज़िम्मे है कि क़ारिईन को उम्मत के वक़ार व सरबुलन्दी के ख़्वाब दिखाए, उन ख़्वाबों की तअबीरों को आपके सामने रखे! लेकिन उन ख़्वाबों की हसीन तअबीरें भी हर आँख से अपने हिस्से के रतजगे मांगती हैं, हर दिल से मौसमे-गुल की ज़रखेज़ी का सामान तलब करती हैं,

**दिल की खेती को है पानी की ज़रूरत मक़सूद,**

**इस क़द्र अशक़ बहाओ कि डुबो दो खुद को !**

यह किताब जो आपके हाथों में आई है, लिखने वालों ने उन्हें अपने खूने-जिगर से लिखा है, दर्द के दरिया में डूब कर ही यह गौहर निकाले जाते हैं! पस, इस दर्द-दिल को आगे से आगे बांटिये ताकि जिहाद का यह भूला हुआ गुमगश्ता फ़रीज़ा एक बार फिर मैदाने-बद्र ही की तरह की निदा-ए-हक़ व तागूत के ख़ात्मे के हंगामी व जोशिले नारों और सदाओं से फ़िज़ाओं को गुंजा दे।

शैख़ अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रहमतुल्लाहि अलैह का यह फ़तवा (बशक्ले-किताब), जो इस वक़्त आपके हाथों में है, आपके लिये भी है और आपके अहबाब के लिये भी, आपके पड़ौसियों और अक़रबा के लिये भी, बल्कि हर मुसलमान के लिये यह एक गिरा-माया (अनमोल) तुहफा है कि उन्हीं से उन्हीं की जानों, मालों, इज़्जतों और ज़मीनों की हिफ़ाज़त का सवाल है जिसका जवाब इस (फ़तवे) में दिया गया है। इसे पढ़िये, समझिये..... यह खुद आपको बताएगा कि इसे पढ़ाना और समझाना किस क़द्र आज ज़रूरी व एक मुसलमान के लिये आज की एक सबसे बड़ी ज़रूरत है।

उम्मत-मुस्लिमा आज उदास है, मग़मूम है ! आइये, उसकी उदासी के असबाब को समझें ! आइये, उसके ग़मों को दूर करने का सामान तैयार करें, शायद के हम उसका हल भी तैयार कर लें, लेकिन उसके लिये भी हौसले व जज़्बे की ज़रूरत है, जो फिलहाल आपकी व हमारी अमली कोशिशों से तो कोसों दूर तक भी नज़र नहीं आता। हाय अफ़सोस!

क्या मिल्लते-इस्लामिया की ज़रखेज़ खेतियां आप हैं?

क्या रसूले-मुकर्रम (ﷺ) की निफ़ाज़े-शरिआ आपकी इन कोशिशों से मुमकिन है?

क्या रसूले-मुहतरम (ﷺ) की जुल्फ़िकार की खनक आपके किरदार से अयाँ हो पा रही है?

क्या अबूबक्रो-उमर, खालिद बिन वलीद, मुसेएब, तारिक बिन ज़्याद, सलाहुद्दीन अय्यूबी की क़ायमकर्दा इस्लामी हिफ़ाज़ती फ़सीलों को आप क़ायमो-दायम रख पाने का



मअद्दा अपने-आप में पाते हैं?

यकीनन, नहीं, क्योंकि हमारे अमली क़िरदार व कोशिशें तो इस ओर बिल्कुल भी निशानदेही के अलामात को ज़ाहिर नहीं कर रही हैं।

खैर, मैं मुतर्जिम, और कोई आजमाइश व सवालात के कुएं से आपको व खुद अपने आपको बचाते हुए अल्लाह की तौफ़ीक़ से यह फ़तवा आप अल्लाह के दीन के अन्सारियों के हाथों में सौंपता हूं कि लिल्लाह, इस फ़तवे (बशक्ले किताब) को सिर्फ अपने मुतालेअ के ख़जाने को मजीद निखारने के लिये न पढ़ें, बल्कि इसकी अमली जद्दोज़हद की सूरतों को आसान व सबके लिये मयस्सर असबाब को बनाने का ज़रिया बनाएं। वरना अमल के बिना ऐसे फ़तवों की कामयाबी ही क्या?

**देता ही रहा शैख़ किताबों के हवाले, गाज़ी ने चमकती हुई तलवार उठा ली !**

इसके ज़रिये उलम-ए-सू, शिकमपरस्त और दीनफ़रोश आलिमों (माफ़ी के साथ) को उभारिये, उनसे कहिये कि अपने खुत्बात के धारे को मोड़िये, उनसे अवामुन्नास को जिहाद के इस भूले हुए सबक़ को दोहराने की इल्तजा किजिये, अफ़सोस, जो काम उलम-ए-रब्बानी होने के नाते उनका था वो काम आम लोगों के कुनबे में से सिर्फ कुछ हजार लोगों के ज़रिये हो रहा है, हो सकता है आप जैसा दीनपसन्द उनमें से किसी के सोए हुए अहसासातो-जज़्बात को जगा दे, क्योंकि हमारा काम तो सिर्फ पहुंचा देना है, तौफ़ीक़ देना तो अल्लाह ही के ज़िम्मे है। हकीमे-उम्मत, अल्लामा इक़बाल ने इन उलम-ए-सू के लिये अपनी दूरन्देशी का मुज़ाहि़रा अपने इन अल्फ़ाज़ के ज़रिये बहुत पहले ही कर दिया था,

**गला तो घोंट दिया, अहले-मदरसा ने तेरा,**

**कहाँ से आए सदा, ला इलाह इल्लललाह,**

इस्लामी सरज़मीनों की दिफ़ाअ का क़ानून, इस मसले के तहत शैख़ अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह. के इस फ़तवे पर कमोबेश 113 ज़य्यिद उलम-ए-दीन की तार्इदो-हिमायत की सनद साथ है, जिनमें अब्दुल्लाह बिन बाज़ रह. और शैख़ उसैमीन अब्दुल्लाह, नसाअ अल वान, शैख़ मुहम्मद नजीब अल मुअती व शैख़ इदरीस जैसे उलम-ए-रब्बानी के नाम हैं। इन 113 उलम-ए-रब्बानी की सनदो-तार्इद के बाद भी हमारे यहाँ के आलिमों के पास जिहाद की अहम शर्तों, उसके तअय्युन के लिये अलग-अलग अदवार की बातें, फ़र्जे-ऐन व फ़र्जे-किफ़ाया की बेइन्तिहा बहसो-मुबाहिसे और कहीं-कहीं तो सिरे ही से जिहाद की फ़र्ज़ियत का इन्कार जैसे तकलीफ़देह सवालो-जवाब के अफ़साने सुनने व देखने में आते रहते हैं।

ऐ अल्लाह! हमें माफ़ फ़रमा और हमें तौफ़ीक़ दे कि हम तेरे दीन के मुआविनो-मददगार बन्दों को इस दीन की **सबसे बुलन्दतरीन चोटी, जिहाद** से आशना करा सकें, साथ ही उलम-ए-दीन को भी तौफ़ीक़ दे कि वो इस दीन के सच्चे दाई होने का अपना फ़र्ज़ अदा कर सकें। (आमीन)



अलहम्दुलिल्लाहि व कफ़ा व सलामुन अला इबाहिदिल्लजी नस्तफ़ा, अम्मा

बअद,

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

मुतर्जम मौसूफ काबिले—सदसताईश व तहसीन (बधाई व तअरीफ़ के लायक) हैं कि उन्होंने लिसानुल्जिहाद, मुर्शिदुलमुजाहिदीन अल्लामा डॉक्टर अब्दुल्लाह अज्जाम शहीद रहमतुल्लाह अलैह की गिराँकद्र जरी—किताब “ईमान के बाद अहमतरीन फर्जे—ऐन दिफाई जिहाद” का तर्जुमा सलीस व शगुफ़ता उर्दू ज़बान में करके इस तबके पर अहसाने—अज़ीम फर्माया है।

जिहादे—अफ़ग़ानिस्तान के अज़ीम सालार दुक्कूर अब्दुल्लाह अज्जाम शहीद रहमतुल्लाह अलैह मुहताजे—तआरूफ नहीं। तमाम आलमे—इस्लाम को पता है कि वोह जिहादे—अफ़ग़ानिस्तान के रूहे—रवां थे। उनकी दीनी अहमियत व ग़ैरत और ईमानी जुराअत व बहादुरी से लबरेज़ वलवलाअंगेज खुतबात और तक्ररीरों ने बिलादे—अरब व अज़म (अरबो—अज़म के शहरियों) के फरज़न्दाने—इस्लाम के कुलूब(दिलों) व अरवाह (रूहों) में सोए हुए जिहादी एहसासात व जज़बात को ललकारा। अरबी जराइद व मुजल्लात (जनसम्पर्क माध्यम) और अख़बारात में अफ़ग़ानिस्तान के ग़य्यूर मुसलमानों पर रूसी दरिन्दों की वहशियाना यलग़ार व बरबरियत के खिलाफ़ दिफाई जिहाद की अहमियत पर जानदार मक़ालात(शोध—पत्र) शाए किए, मशाइख और उलमाए—हिजाज़ और बिलादे—अरब (अरब के शहरों) को अफ़ग़ानिस्तान के पाकीज़ा जिहाद की तरफ़ मुतवज्जोह किया। शबाब व शयूख़(नौजवान व उलम—ए—दीन) से अफ़ग़ानिस्तान का मैदाने—कारज़ार भर दिया।

इस अज़ीम जिहादी क़ाइद से मेरी पहली मुलाक़ात मीना की मुक़द्दस सरज़मीन पर हुई थी। मेरे ख़ालाज़ाद भाई मौलाना सरवत महबूब अली शाह साहब, उर्दुन यूनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे, वो मुझे उर्दुनी तल्बा के साथ मीना में मिले। उन्होंने मुझे यौमुन्नहर(ईदुलअज़हा) के दिन नमाज़े—ईशा के बाद दावत पर बुलाया। मैं मुक़र्ररा वक्त पर उर्दुनी बैअसतुल—हज(हज कमेटी के ज़िम्मेदारान)के मख़ीमात (खेमों) में हाज़िर हुआ। यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों और तल्बा से मुलाक़ात हुई। खुशकिस्मती से मरहूम व मग़फ़ूर दुक्कूर अब्दुल्लाह अज्जाम इस जमाअत के सरबराह थे उन्होंने मुझसे पाकिस्तान के उलम—ए—किराम और मदारिस के बारे में इस्तफ़सारात (सवालात) किए। मैंने उलम—ए—किराम और मदारिस के तफ़सीली हालात बयान किए। फिर शैख़ फर्माने लगे कि आज उलम—ए—किराम और रिजालुद्दीन की ज़िम्मेदारियाँ बढ़ गई हैं, चारों तरफ़ से दुश्मनाने—इस्लाम, इस्लामी शआईर, इस्लामी तशाख़्ख़ुस के मिटाने में मुनज़्जम समझौते के तहत बड़ी तेज़ी से मसरूफ़े—अमल हैं। वोह बहुत ही पुरसोज़ अंदाज में मुसलमानों की हालते—ज़ार पर हसरत व अफ़सोस कर रहे थे। फिर चन्द सालों के बाद जब अफ़ग़ानिस्तान में रूसी साम्राज्य के खिलाफ़ अलमे—जिहाद



बुलन्द हुआ तो मरहूम अब्दुल्लाह अज्जाम मुक़दमतुल्जैश (फ़ौज के सिपहसालार) के तौर पर सफे-अव्वल में नज़र आए, वोह दिन-रात जिहाद की शमा पर परवानों की तरह झपटते रहे और बिलआखिर अपने लख्ते-जिगर के साथ शहादते-उज़मा के आअला व अफ़ा मक़ाम पर फाइज़ हुए।

सक़अल्लाहु सराहू व ज़अलल जन्नत मस्वाह

(अल्लाह उनकी क़ब्र को नूर से भर दे, और जन्नत उनका ठिकाना बनाए, आमीन।)

आख़िर में, मैं एक बार फिर मुतर्जम मौसूफ की इस अज़ीम जिहादी खिदमत पर दिल की गहराइयों से मुबारकबाद पेश कर रहा हूँ और बारगाहे-इलाही में दस्त-ब-दुआ हूँ कि रब्बुलआलमीन ज़लजलाल, मौसूफ को इस दीनी, मज़हबी काविश का सिला दोनों दारैन में नसीब फरमा और इस किताब से अहले-इस्लाम को इस्तफादा की तौफीक़ अता फरमा।

वलिल्लाहिल हम्दि अव्वलन व आख़िरन व सल्लल्लाहु तआला अला ख़ैयरि व ख़लकिही मुहम्मदिन व अलाआलि व असहाबिही अजमईन.

शेरअली, शाह अल-मदनी, उस्ताज़ुल्हदीस,  
जामिया दारुल उलूम हक्कानिया, अकूड़ा खटक !



मौलाना अल्ताफुर्रहमान बनवी,  
उस्ताद जामिआ इम्दादुल-उलूम,  
जामेअमस्जिद, दरवेश, पेशावर

नबी(ﷺ)का इशादि-गिरामी है, यानी "मुझे जामेअ कलिमात अता किए गए है।" जिसका हासिल ये है कि अल्लाह तआला ने उनको बहुत सादा और मुख्तसर अल्फाज़ में बहुत बड़ी-बड़ी और दूर-रस हकीकतों को बयान करने का मलका(कुदरत) अता फरमाया था। बिलाशुबहा नबी(ﷺ)की अहादीस, जामेअ-कलामी का बेहतरीन नमूना है। इस्लाम की वज़ाहत करते हुए नबी(ﷺ)ने एक मौके पर जिहाद के बारे में "ज़ुरवतुस्सनामिह" के अल्फाज़ इस्तेमाल फरमाए हैं। ज़ुरवतह, किसी चीज़ की बुलंदतरीन चोटी और उम्दा हिस्से को कहते हैं, जिसको हासिल करके आदमी उस चीज़ की असल हकीकत और पूरी मअनवियत(असल मतलब)को पा जाता है।

इन्सानी तारीख और नफसियात के वसीअ अमीक (बेहद लम्बे व गहरे) मुतालेअ से यह बात दो-जमाअ-दो, चार, की तरह एक मुसल्लमा(खुली व साफ़) हकीकत की सूरत में सामने आती है कि इन्सान किसी मकसदे-अज़ीज़ के हुसूल के लिए जान की बाज़ी सबसे आखिर में लगाता है। छोटे-छोटे मरगूबात के लिए तो वोह सब कुछ तज देने पर आमादा होता है लेकिन जान का नज़राना देने में वोह बहुत कंजूस साबित हुआ है। ज़िंदगी की कुर्बानी सबसे आखिर में और फकत उसी मकसद के लिए वोह पेश करता है जिससे वोह न सिर्फ अक़ली बल्कि तबअी तौर पर भी मुहब्बत की इन्तिहा तक पहुँचा हुआ हो। किसी भी चीज़ से मुहब्बत का इकरार व एअतराफ या दावा करने के बाद उसकी जांच परख करने की बेहतरीन कसौटी उस पर जान कुर्बान करना ही करार पाती है।

नबी(ﷺ)के जिहाद के बारे में ज़िक्र किये गए अल्फाज़ (ज़ुरवतुस्सनामिल इस्लाम अल जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह) इस हकीकत की शिनाख्त करते हैं कि इस्लाम की असल हकीकत और मअनवियत उन्हीं लोगों को हासिल होती है जो उसके लिए जान की बाज़ी लगा देने से दरेग नही करते क्योंकि हदीस की ज़बान में जिहाद नाम ही जान की कुर्बानी देने का है। एक बुजुर्ग फरमा रहे थे कि मदीना-मुनव्वरा में गो-एअतक्रादी (अगर्चे यक़ीनी) मुनाफ़िक़ीन की भी कमी न थी लेकिन अक्सरो-बेशतर मुनाफ़िक़ीन का तअल्लुक उसी गिरोह से था जिनको दीन के ग़लबे और सरबुलन्दी के लिए जिहाद का याराना था, सो उसी मुश्किल ने उनको मुनाफ़िक़त की मुहलिकतरीन वादी में धकेल दिया। मैं समझता हूँ कि यह बात जिस तरह उस वक्त सही और बजा थी, चौदह सौ साल गुज़रने के बाद आज भी ठीक-ठीक उसी तरह बल्कि उससे भी कहीं बढ़कर सही है।

बहुत बड़े-बड़े रिवायती किस्म के दीनदार और सुलहे-कुल के अलमबरदार (जमाअत व जमिअतों के औहदेदारान) जिहाद के नाम पर नाक भौंए चढ़ाते हैं और बड़ी



नागुफ्तगी(बेरूखापन)और दूर अज़कार किस्म की ताविलात से उसकी अहमियत कम करने के दरपे हैं, कुर्आन व हदीस की नुसूस (व दलाइल) और फुक़ह-ए-किराम की तशरीहात से सरफ़े-नज़र (नज़रअन्दाजी)करते हुए ख़्वामख़्वाह के लैतो-लअल (किन्तु-परन्तु) से उसमें कीड़े निकालते हैं। **खुद अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी अदा नहीं करते और दूसरों को भी उस ज़िम्मेदारी का अहसास नहीं करने देते।**

लेकिन इन बातों के बावजूद नामालूम अल्लाह तआला ने इस्लाम की फितरत में क्या अजीबो-गरीब ख़ासियतो-दिश्यत फर्माई है कि जब भी दुश्मनाने-इस्लाम का ग़ल्बा बज़ाहिर एक हकीक़ते-साबिता बनने लगता है और हर तरफ से तह-ब-तह मायूसियाँ छाने लगती हैं तो ग़ैर-मुतवक़ेअ तौर पर इस्लाम खुद ही अपने अंदर से खींच-खींच कर हर नतीजे से बेपरवाह ऐसे पुरजोश मर्दे-मुजाहिदों को मुक़ाबले के लिए महाज़े-जंग पर ला खड़ा करता है जिनके मज़बूत हौंसले और अज़ाईम पहाड़ों से टकराकर उन्हें पाश-पाश करने के लिए बेताबो-बेकरार होते हैं। इस्लामी तारीख में ये वाक़िया एक बार नहीं बल्कि बार-बार पेश आ चुका है और आज भी हम आंखें फाड़कर बड़ी हैरत व इस्तिजाब से इस अक़ल को हैरान कर देने वाले मंज़र को अपने रूबरू देख रहे हैं और इस्लाम की अपनी तासीर बिल्ख़ासियत के सिवा उसकी कोई और मअकूल तौजिह (व्याख्या) नहीं कर पा रहे हैं।

दुनिया की एक बड़ी समझी जानेवाली क़ौम रूस ने बेसरो-सामान अफ़ग़ानिस्तान को लुक़म-ए-तर समझकर बड़े एअतमाद(यकीन) और जोशो-ख़रोश से उस पर हमला किया लेकिन अफ़ग़ानियों ने मादियत के उस सैलाब को (अल्लाह की तौफ़ीक़ के साथ) रूहानियत के ज़ोर से रोका, जिहाद का अलम उठाया और बिलआख़िर रूस अपने ज़ख़म चाटता हुआ ज़लीलो-ख़वार होकर भाग निकला। इसमें शक नहीं कि रूस की पसपाई और शिकस्त में इस्लाम-दुश्मनों की अपने अग़राज(मक़सद)के लिए रिफ़ाक़त और पश्तीबानी ने भी अपना असर दिखाया,लेकिन फ़तह व ज़फ़र का असल सेहरा अरब व अजम के उन्हीं मुजाहिदीन के सर है जिन्होंने अल्लाह तआला का नाम लेकर पहाड़ों से टकराना तै किया और बारगाहे-ईलाही में सुख़रू होकर पहुँचे।

**बनाकर दंद खुश रस्मे-बखाको-खून ग़ल्तीदन**

**खुदा रहमत कुनद ई आशिक़ाने-पाक तिनतरा**

इन्हीं अरब मुजाहिदीन की सफ़े-अव्वल में एक बहुत ही मुअज़्ज़ज,महबूब और रोशनतरीन नाम अब्दुल्लाह अज़्जाम शहीद रह. का है जिन्होंने अपने खुलूस,लगन और जोशो-ख़रोश के ज़रिए जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान के हवाले से वोह रूत्बा हासिल किया जिसका अशरे-अशीर(दसवां हिस्सा)भी किसी मोमिन के लिए बहुत बड़ा तम्गा-ए-इम्तियाज़ और माया-ए-इफ़ितख़ार(फ़ख़्र का निशान)समझा जा सकता है। उन्होंने सैफ़ो-सनान और(तलवार की ज़बान) क़लमो-लिसान(ज़बान,यानि तक़रीर)के हर महाज़



पर दुश्मन का डटकर मुकाबला किया और इस सिलसिले में किसी थकावट और यास (मायूसी) को अपने पास फ़टकने न दिया। मरहूम जो एक मर्तबा अफ़ग़ानिस्तान में कुफ़्र के खिलाफ़ सरगमै-अमल हो गए तो फिर उसी के हुए रहे, बिलआख़िर जान का नज़राना पेश किया, शहादत के रूतब-ए-उज़्मा पर फाइज़ हुए और “आशा सईदन वमाता शहीदन” के मिस्दाक़े-बरहक़ ठहरे।

एक तवील अरसे के बाद रूसी साम्राज्य के खिलाफ़ जिन लोगों ने फरीज़-ए-जिहाद के आहया (हुसूल व उसके मक़सद) में बुनियादी क़िरदार अदा किया, शहीद अब्दुल्लाह अज़्जाम उन सबमें नुमायातरीन शख़िसियत के हामिल हैं। शैख़ उसामा बिन लादेन शहीद (रह.) और उनके रूफ़का ने इसी तसलसुल को आगे बढ़ाया, जिसके ज़ेरे-असर पूरी दुनिया में जिहाद का गलगला बुलंद हुआ “मअरक-ए-मेनहट्टन” (ग्यारह सितम्बर 2001 ई.) के बाद, कुफ़्र ने मुसलमानों पर अरसा-ए-हयात (ज़िन्दगी को) तंग करना शुरू किया तो इस्लाम की फितरत ने एक मर्तबा फिर अंगड़ाई ली और मुख्तलिफ़ जवानिब व अतराफ़ (दिशाओं व कोनों) से उश्शाके-जिहाद (जिहाद के चाहने वालों) ने “तयरन अबाबील” का रूहपरवर समाँ बांधा और आज हालत ये है कि किसी नामो-नमूद और मफ़ाद से बेपरवाह हज़ारों नौजवान मशरिको-मग़रिब से आकर शहीदी हमलों के लिए अपने नाम दर्ज करवा रहे हैं और कुफ़्र के घरों को जलाकर राख़ कर देने के लिए बेताब बिजलियों की तरह कौंध रहे हैं।

पूरी दुनिया में मुसलमानों के वसाइल (संसाधनों व मिलिक्यत) और इक़्तिदारो-इख़्तियार पर काबिज़ फरमा-रवां तबक़ा आम तौर पर कुफ़्र के आलाकारों की सफ़ में खड़ा है। लेकिन हलावते-ईमानी की दौलत से मालामाल और ग़ल्ब-ए-दीन के जज़बे से सरशार आमातुल्मुस्लिमीन (आम मुसलमानों की जमाअत) दुनिया की “आलमी ताक़त” होने के दावेदार अमरीका के लिए लोहे के चने साबित हो रहे हैं। अल्लाहुम्मा ज़िद-फ़ज़िद, (ऐ अल्लाह ! दिन ब दिन ऐसे अफ़राद बढ़ाता रह) यह सब कुछ शहीद अब्दुल्लाह अज़्जाम रह. के काशतकर्दा जिहाद की खेतियों के वोह मीठे फल व फूल हैं, जिनसे दज्जालियत के इस गए गुज़रे दौर में भी अहले-ईमान के काम व दहन मुतलज़ज (खुश व लज़्जतआमेज़) हो रहे हैं।

कुफ़्र के खिलाफ़ बरसरे-पैकर आज के तमाम मुजाहिदीन, अब्दुल्लाह अज़्जाम शहीद की रूहानी औलाद व ज़ुर्रियत हैं, जो उन्हीं की तारीख़ को पाया-ए-तकमील तक पहुंचाने के लिए रवां-दवां हैं। इराक़ व अफ़ग़ानिस्तान के यही मुजाहिदीन मिल्लते-इस्लामिया की आंख के तारे हैं जो पूरी मिल्लत की तरफ़ से दिफ़ाअे-इस्लाम का फरीज़ा अदा कर रहे हैं। कुफ़्र के ऐवानों (महलों) में उनके रौब व दबदबे से ज़लज़ला पाया जाता है। दुश्मनों के परोपैगन्डे में आकर उनको दहशतगर्द करार देने वाले या



तो हृदयर्जा सादगी और जिहालत का शिकार हैं और या फिर दुनिया की खातिर अपनी आखिरत को बर्बाद करने वाले हैं मुसलमानों के लिए उन आस्तीन के सांपों से बहुत अहतियात बरतना लाज़िम है।

शेख अब्दुल्लाह अज्जाम रह. शहीद का सारा तहरीरी काम चार मबसूत जिल्दों में छपकर बहुत पहले (पाकिस्तान में) मंज़रे-आम पर आ चुका है। मुतर्जम मौसूफ ने इसी मवाद में से, जिहाद के मौजू पर उनके एक अरबी रिसाले का इंतखाब करके उसे उर्दू (फिर दुआओं के मुहताज इस बन्दे ने हिन्दी) में मुंतक़िल किया कि उसमें जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान की ईमान पर तफ़सीलात के साथ-साथ बहुत से अहम इल्मी मौजूआत पर कुर्आन व हदीस की रोशनी में बहुत मुअस्सर तहकीकात सुपुर्दे-क़लम की गई हैं।

मुतर्जम, उर्दूख़वानों (व हिन्दी के लिये भी दुआ की दरख़वास्त है।) की तरफ से बहुत दादो-तहसीन के मुस्तहक़ हैं कि उन्होंने जिहाद से मुताल्लिक अपने वक्त के एक बहुत बड़े मुजाहिद के ख़यालात से लोगों को आगाही बख़शी और इस सिलसिले के बहुत से सवालात व शुबहात के काफी व शाफ़ी जवाबात से बहरामंद किया।

फ़जज़ाहुल्लाहुल-अहसनुलजज़ाह फिदुनिया वल आख़िर, आमीन !

अल्ताफ़ुर्रहमान बनवी,  
उस्ताज़, ज़ामिआ इम्दादुल उलूम,  
ज़ामा मस्जिद, दरवेश, पेशावर, सदर



मौलाना हाफिज़ साजिद अनवर,

दारुल उलूम तफहीमुल-इस्लाम, नौशहरा

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

इमाम अब्दुल्लाह अज्जाम शहीद रह. की ये किताब अद्दिफाऊ अन आराज़ियल-मुस्लिमीना, अहम फुर्रिज़ुल आयान बअदल ईमान ! दरअसल उनका वोह फतवा है, जो उस वक्त दिया गया था जब अफ़ग़ानिस्तान में रूसी अफवाज घुस आई थीं। इस फतवे ने सुर्ख सैलाब(रूस)के आगे बन्द बांधने में अहम क़िरदार अदा किया। अल्लाह उनकी रूह को राज़ी कर दे कि ये आवाज़ इतनी मुअस्सर थी कि इसे सुनकर अरबो-अजम ने अपने जिगर के ग़ौशे इस जिहाद के सुपुर्द कर दिए। इन लफज़ों का हक़ भी था कि ऐसा असर दिखाते कि इमाम अज्जाम रह. ने इस फतवे को अपनी क़लम की स्याही से नहीं, ख़ूने-जिगर से लिखा था। कुफ़्र का आलमगीर शिकंजा ये कैसे बर्दाश्त कर सकता था कि ये क़लम य़ूहीं चलता रहे, जबान फहमे-दीन का क़र्ज़ चुकाती रहे और शैख़ुल अज्जाम बाबे-खुरासान(अफ़ग़ानिस्तान के दरवाज़े)की चौखट पर खड़े आलमे-इस्लाम के जवानों को जोक़ दर जोक़ यहूदो-नसारा और मुशिरकीन के दामने-फरेब से निकाल कर सरबुलन्दी व उरूज के मअरकों में उतारते रहें। वोह ताग़ूती निज़ामे-तालीम जिसने मिल्लते-इस्लामिया के नौजवानों का शाहाना(राजसी)तर्ज़े-ज़िंदगी का आदी बना दिया है, कपड़े-लत्ते का गुलाम बना छोड़ा है मगरिबी कुफ़्री तहज़ीब से मरउब (भ्रमित) कर दिया है, शैख़ ने ऐसी हजारों, लाखों बेसिम्त जवानियों को अज़मत व अज़ीमत के रास्तों पर लगाया, ज़िल्लत की ज़िंदगी पर इज़्जत की मौत को तरजीह देने का दर्स और अबाबीलियों को हाथियों से टकराने का हौसला दिया। नतीजतन नील के साहिल से काशगर तक और मगरिब की वादियों से साईबेरिया व सिकियांग के बर्फ़िस्तानों तक से मुजाहिदीन के गिरोह दर गिरोह अल्लाह के रास्ते में निकल खड़े हुए।

ये सारा मंज़र आलमी कुफ़्री निज़ाम के लिए नाक़ाबिले-बर्दाश्त था, चुनांचे 24 नवम्बर 1989 ई. को पेशावर की एक मसरूफ़ शाहेराह अनदेखे हाथों शैख़ की गाड़ी धमाके से उड़ा दी गई, जाने वाले को वोह खज़ाना-ए-जावदां मिल गया जिसके लिए उसने पहले अपनी जाए-पैदाईश अर्जे-मुक़द्दस, फिलीस्तीन को छोड़ा, फिर बतौर-मुअल्लिम जामिया उम्मुल्कुरा, मक्का और जवारे-काबा की मफारक़त(जुदाई) को बर्दाश्त किया, और फिर आख़िर में बैनुलअक़ामी इस्लामी यूनिवर्सिटी, इस्लामाबाद को भी अलविदा कह दिया कि 'इल्म' को जिस 'अमल'की जुस्तजू थी उसका दर्जा कील व क़ाल की दुनिया से बहुत बुलंद था। ये जुमे का दिन था जिस रोज़ शैख़ अपने दोनों नौजवान बेटों के साथ, लहू से बावुजू और सुर्खरू होकर अपने रब के दरबार में पहुंचे। जान



वाले के जसद(बदन)से उठती हुई महक बजबाने—हाल कह रही थी कि दरबारे—इलाही में इस लहू की क्या कीमत है? आज दुनिया में जहां भी इस फरीजा—ए—गुमगस्ता(खोए व भूले हुए फर्ज)की अदाएगी में मसरूफ लोग देखे जाते हैं तो उनके किरदार व अफकार में उसी लहू की रोशनाई(स्याही)झलकती नज़र आती है।

शहीद रह. ने अपने पीछे आहया—ए—जिहाद पर मबनी एक अज़ीमुशशान इल्मी ज़खीरा छोड़ा जो उनके लिए इंशाअल्लाह सद्का—ए—ज़ारिया रहेगा और मुसलमानों की आईदा नस्लें, इससे इल्म व हिकमत के मोती चुनती रहेंगी। शहीद की ये तारीखी किताब भी उसी 'अनमोल' खजाने का एक सुनहरा 'बाब' है और मुझे ये बात कहने में कोई बाक (डर) नहीं कि ये किताब असरे—हाज़िर(आज के ज़माने) की अहमतररीन किताबों में से है क्योंकि इसमें जिस मसले पर गुफ्तगू की गई है वोह इस ज़माने में मुसलमानों को दरपेश अहमतररीन मसला है, यानी "मुस्लिम सरज़मीनों पर काफ़िर अक्राम की चढ़ाई और कब्ज़ा" और नतीजतन इस्लाम की ऐसी ज़बूंहाली कि बयान की ताब नहीं !

फिर ये किताब इस लिहाज़ से भी अहम है कि यह हर मुसलमान मर्द, औरत, बूढ़े व जवान को मुखातिब करती है, उसके सामने इस मसले का हल पेश करती है, और उसे याद दिलाती है कि ऐसी सूरते—हाल में ईमान लाने के बाद उसका अहमतररीन फर्जे—ऐन क्या है ? वह फर्ज जिसे न निभाने की सूरत में मुसलमान का ईमान दांव पर लग जाता है क्योंकि एक तरफ तो अल्लाह तबारक व तआला जिहाद से दूरी को मुनाफ़िकीन की सिफत करार देते हैं और दूसरी जानिब जिहाद से मुंह फेरने का नतीजा अमलन यही होता है कि मुसलमानों के इलाक़े कुफ्र के कब्ज़े में चले जाते हैं, फितना जड़ पकड़ लेता है, मुसलमान मग़लूब हो जाता है। शआईरे—दीन पर अमल पैरा होना मुश्किल हो जाता है और शिर्कवार तदाद(इस्लाम से पलटना) फैल जाता है। कुफ्र के इसी ग़लबे के तदारक(रोकथाम) के लिए, ऐसी सूरते—हाल में दिफाई जिहाद अहमतररीन फर्जे—ऐन बन जाता है। अज़ाम शहीद रह. ने इस मौज़ूअ पर शरई दलाईल को इस किताब में निहायत जामेअ और मुदल्लल अंदाज़ में इकट्ठा किया है।

मौजूदा हालात में जबकि पन्द्रहवीं सदी हिजरी की सलीबी जंग अपने उरूज़ पर है, इस्लाम के बड़े—बड़े नामलेवा कुफ्र से मुदाहिनत(चापलूसी), मुसालिहमत (समझौते) और अदम—मुखासिमत(खुद चलाकर अमन के समझौते)का दर्स दे रहे हैं, (पढ़िये, जामिया सलफ़िया, बनारस—हिन्दुस्तान, से दहशतगर्दी के खिलाफ़ सिर्फ़ कुआनी—सुन्नत के दाई होने का दावा करने वाली, जमिअत अहले—हदीस, का फ़तवा जिसमें साफ़ तौर पर कहा गया है कि दुनिया में इस वक्त कहीं भी ऐन इस्लाम के मुआफ़िको—मुताबिक़ जिहाद नहीं चल रहा है। अमेरिका यही चाहता है, उलम—ए—सू भी उसकी ही ज़बान में फ़तवों को कलमबन्द कर रहे हैं (मुतर्जिम))



अब्दुल्लाह अज्जाम शहीद की यह किताब एक मिनारा-ए-नूर है, जो बताती है कि मुसलमानों के दीन, जान, माल और इज्जत पर अगर हमला हो जाए तो अव्वलन फर्ज क्या बनता है। बिलाशुबहा ये किताब यकीनन इस लायक है कि हमारी मौजूदा और आईदा नस्लें इसको समझें और इसके तकाजों पर अमल करें। उसे नई नस्ल के तालीमी निसाब में शामिल होना चाहिए, क्योंकि इसमें दिए गए दुरुस किसी भी मुसलमान से गैर-मुताल्लिक नहीं है।

अल्लाह तआला से दुआ है कि वोह इस किताब को जिहाद के गमगुश्ता फरीजे के आह्दा का जरिया बनाए और हमें उम्मत-इस्लाम की दिफाअ के लिए उठने वालों में शामिल फरमाए। क्योंकि वक्त का ये अहमतरीन फरीजा अगर निभाया न जा सका, तो फिर ... ये जान व माल किस काम के ?

हाफिज़ साजिद अनवर  
(मुदीर, दारुल उलूम तफहीमुल-इस्लाम, नौशहरा)



# फतवे की ताईद में आलमे-इस्लाम के बाज़ दीगर उलम-ए-किराम की तहरीरें !

## शैख मुहम्मद नजीब का खत

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है, तमाम तारीफें अल्लाह ही के लिए हैं। अल्लाह की सलामती और बरकतें हों रसूले-अकरम(ﷺ) पर, उनके घर वालों पर, उनके साथियों पर और तमाम उन लोगों पर जो उनकी राह पर चले।

अल्लाह की राह में जिहाद का मक़सद शहादत को पाना है। जिसके बारे में अल्लाह ने अपने कलाम में फ़र्माया “ताकि अल्लाह तुममें से शहीद ले सके” (3:160) ये एक जहान से दूसरी जहान की तरफ जाना है। एक परेशानी वाली, बेइंसाफ़ दुनिया से एक खुशी और सुकून वाली दुनिया की तरफ।

जिहाद के मौजूअ पर हमारे मुजाहिद शैख अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम ने लिखा। फ़िक़ह, हदीस और तफ़सीर से दलाइल दिए। जो कि मुखालिफ़ों के लिए तकलीफ़देह, कायरों और मुनाफ़िकों की आंख में किरकिरी है और उन्होंने साबित किया कि इस नाजुक घड़ी में उम्मत के कैंसर को ठीक करने के लिए इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है। ज़िन्दगी का यही मक़सद है कि ये अल्लाह और उसके रसूल(ﷺ) की इताअत में बसर की जाए ताकि उम्मत वापस अपना वक़ार पा सके।

ईमान वाला अल्लाह की राह में जिहाद करता है अगर वोह गिरता है तो सीखता है अगर ज़ख्मी होता है तो उसके गुनाह माफ़ होते हैं अगर उसे निकाला जाता है तो वोह एक मुसाफ़िर है और अगर उसको कैद किया जाता है तो वोह आबिद है अगर ज़िन्दा रहता है तो वोह गाज़ी है अगर मरता है तो शहीद है और उसके लिए बहुत से ख़ैर और भी हैं।

सलामती हो उस पर जिसने इस दावत को सुना और लब्बैक कहा।

शैख मुहम्मद नजीब



## शैख अब्दुल्लाह नसाह अल वान का खत

सब तारीफ़ अल्लाह ही के लिए हैं और अल्लाह की रहमतें और बरकतें हों मुहम्मद(ﷺ) पर उनके घर वालों पर और उनके साथियों पर और उन लोगों पर जिन्होंने जिहाद के अलम को पूरी दुनिया में उठाया हुआ है और जो नेकी की तरफ बुलाते हैं और बुराई से रोकते हैं। शैख अब्दुल्लाह अज्जाम ने जो फ़त्वा मुझे दिखाया, वोह सही है और यही मुअक़फ़ था हमारे अस्लाफ़ और चारों मज़हब के इमामों का और दीगर अहले-इल्म का कि "अगर किसी इस्लामी रियासत पर काफ़िर कब्ज़ा कर लें तो जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाता है उसके लोगों पर, तो बीवी अपने शौहर की इजाज़त के बिना और लड़का अपने वालिदैन की इजाज़त के बिना और गुलाम अपने मालिक की इजाज़त के बिना जिहाद के लिए निकलेगा और जिहाद हर नजदीकी मुल्क पर फ़र्ज रहेगा यहां तक कि उनमें इतनी ताक़त हो कि मुस्लिम रियासत को आजाद करा सकें और अगर उनके पास इतनी ताक़त नहीं कि काफ़िरों को शिकस्त दे सकें तो ये फरीज़ा आस-पास के मुस्लिम मुल्कों पर आइद होगा यहां तक कि जिहाद पूरी ज़मीन पर फ़र्जे ऐन हो जाता है।'

तो, आज हर मुसलमान पर ये फ़र्ज है कि वो हथियार उठाए और अपने भाईयों की मदद के लिए फ़िलिस्तीन और अफ़ग़ानिस्तान या हर वो जगह जहां पर उसकी ज़रूरत है, जाए और इसके लिए उसको अपने वालिदैन से इजाज़त लेने की कोई ज़रूरत नहीं। वल्लाहू-अअलम ।

शैख अब्दुल्लाह नसाह अल वान



## शैख उमर सैफ की राय

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

अलहम्दुलिल्लाहि व सल्लललाहू अला सय्यिदिना मुहम्मदन व आलिही व असहाबिही व मन व आला, वबअद, अखीफिल्लाह, शैखे-फाज़िल, मुजाहिदे-सादिक, दुकतूर अब्दुल्लाह अज़्जाम ने जिहाद के शरई हुक्म और इसके फर्जे-ऐन होने से मुताल्लिक ये अज़ीम फतवा, ये कीमती नसीहत मुझे दिखाई है मैंने ये पूरा फतवा पढ़ा है और इसे बिल्कुल दुरुस्त और ऐन मुताबिक हक पाया है। यकीनन इससे नज़रें चुराने की कोई गुंजाईश नहीं और जिस शख्स के दिल में ज़र्रा बराबर भी ईमान होगा वह किताबुल्लाह, सुन्नते-रसूल (ﷺ) और इजम-ए-उलमा के इन दलाइल के सामने सरे-तसलीम ख़म कर देगा। मेरी राय यही है कि इस वक्त जिहाद की फर्जियत को मानना, उसकी अदाएंगी के लिए घरों से निकलना और एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर जिहाद में शिरकत करना ही तकाज़-ए-ईमान है और ऐसा करने से सिर्फ उसी तरह के लोग रूकेंगे, जिन के बारे में अल्लाह तआला ने फरमा दिया था :

فَإِذَا أَنْزَلْتُ سُورَةً مُحْكَمَةً وَذُكِرَ فِيهَا الْقِتَالُ رَأَيْتَ الَّذِينَ فِي

قُلُوبِهِمْ مَّرَضٌ يَنْظُرُونَ إِلَيْكَ نَظَرَ الْمَغْشَىٰ عَلَيْهِ مِنَ الْمَوْتِ (20)

“मगर जब एक साफ-साफ मज़मून वाली सूरत नाज़िल कर दी गई जिसमें क़िताल का ज़िक्र था तो तुमने देखा कि जिन लोगों के दिलों में बीमारी थी वो तुम्हारी तरफ इस तरह देख रहे हैं जैसे किसी पर मौत की बेहोशी तारी हो। ”

(सूर : मुहम्मद 20)

यक़ीनन अज़मतों वाले अल्लाह ने सच फर्माया ! अल्लाह तआला शैख़ अब्दुल्लाह अज़्जाम शहीद को, उनकी हुस्ने-नीयत और बरवक्त इक्दाम पर बेहतरीन जज़ा दे और हम सबको अपनी रज़ा वाली राह इख्तियार करने की तौफ़ीक़ दे। बिलाशुब्हा जिहाद आज फ़र्जे-ऐन है और किसी को इससे पीछे रहने की इजाज़त नहीं ।

अलफ़कीर इलल्लाह,

## उमर सैफ

(28-12-1404, हिजरी, जिद्दाह)

(मजलिसे-किबारूल उलमा, सनाअ, यमन)





## कुछ साहिबे-किताब के बारे में (अब्दुल्लाह अज्जाम शहीद रह.)

अब्दुल्लाह अज्जाम की सीरत :- अब्दुल्लाह अज्जाम की पैदाईश उत्तरी फिलिस्तीन के जिनीन जिले के एक गांव सेलात अल हरिसिया में 1941 को हुई। उनके वालिद का नाम मुस्तफा अज्जाम था। जिनका इंतकाल अपने बेटे की शहादत के 1 साल बाद हुआ और उनकी वालिदा का नाम जकिया सालेह था। जिनका इंतकाल अपने बेटे की शहादत के एक साल पहले हुआ। इन्हे पाबी कैप में दफनाया गया था।

अज्जाम परिवार एक माअरूफ परिवार था। जिसके एक फर्द का नाम अब्दुल्लाह अज्जाम था। एकजहीन बच्चा जिसने इस्लामी दावत का काम बचपन से ही शुरू कर दिया था। उस्तादों ने उनकी काबिलीयत को इब्तदाई स्कूली मरहले में ही जान लिया था। उनके साथी उन्हें उनके ग्रुप का एक नेक बच्चा शुमार करते थे। वोह अपने मजबूत इरादों पुख्ता-मिजाज के लिए जाने जाते थे।

शैख अब्दुल्लाह अज्जाम ने अपनी इब्तदाई और दर्मियानी तालीम अपने गांव में हासिल की, और आगे की तालीम खुदरी कृषि कॉलेज से ली। जहां उन्होंने डिप्लोमा की डिग्री ली। हालांकि वोह अपने साथियों में सबसे छोटे थे मगर सबसे तेज और होशियार थे। खुदरी कॉलेज से स्नातक की डिग्री लेने के बाद उन्होंने दक्षिणी जॉर्डन के एक गांव में टीचर की नौकरी की। बाद में उन्होंने दमिश्क विश्वविद्यालय, सिरिया के शरिया कॉलेज में दाखिला लिया। जहां पर उन्होंने शरियत में बी.ए. की 1966 में डिग्री हासिल की। जब यहूदियों ने वेस्ट बैंक (गाज़ा) पर 1967 में कब्जा कर लिया तो अब्दुल्लाह अज्जाम ने जार्डन से हिजरत करने का इरादा किया। क्योंकि वो यहूदियों के कब्जे वाले फिलिस्तीन में नहीं रह सकते थे। फिलिस्तीन की मुकद्दस ज़मीन पर इज्राइली टैंको के बिना रोक-टोक के आने जाने में उनके हिजरत करने के इरादे को और मजबूत किया ताकि वो जंग करने के तौर तरीके सीख सकें। 1960 के आखिर में उन्होंने जॉर्डन से फिलिस्तीन पर इज्राइली कब्जे के खिलाफ होने वाले जिहाद में शिरकत की। उसी दौरान उन्होंने अलअज़हर यूनिवर्सिटी, मिस्र से शरियत में एम.ए. की डिग्री हासिल की। 1970 में जब जिहाद रूक गया और पीएलओ, जॉर्डन से निकाल दिया गया तब उन्होंने अम्मान की यूनिवर्सिटी में बतौर-उस्ताज़ काम करना शुरू कर दिया। 1971 में उन्हें अलअज़हर यूनिवर्सिटी से स्कॉलरशिप मिली। जिससे उन्होंने 1973 में उसूले-फ़िक्ह में पी.एच.डी. की डिग्री हासिल की। मिश्र में ही रहने के दौरान उनकी मुलाकात सय्यद कुतुब के खानदान वालों से हुई।

1979 में उन्हें यूनिवर्सिटी से निकाल दिया गया और वहाँ से वोह पाकिस्तान



चले गए, ताकि अफगान जिहाद के करीब रह सकें। वहां पर उनकी मुलाकात अफगान जिहाद के कई बड़े मुजाहिदीन से हुई। पाकिस्तान में शुरूआती दिनों के क़याम में उन्होंने इस्लामाबाद की इस्लामिक यूनिवर्सिटी में बहैसियत उस्ताज़ काम किया। मगर बाद में उन्होंने उस्ताज़ के पद से इस्तीफा दे दिया। ताकि वो अपना पूरा वक़्त और ताकत अफगान जिहाद में लगा सकें।

अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम अफगानिस्तान के जिहाद से बहुत मुतास्सिर हुए और जिहाद पर उनके भी बहुत असरात हुए। यहां तक कि उन्होंने अपनी पूरी कोशिशों इसमें लगा दीं और यहाँ वोह अफगान जिहाद के एक बड़े काईद बनकर उभरे। उन्होंने अफगान जिहाद की तब्लीग़ में कोई कसर नहीं छोड़ी और इसे पूरी दुनिया में बिलखुसूस, मुस्लिम उम्मत में फैलाया। उन्होंने अफगान जिहाद के बारे में लोगों के ज़हन बदले और बताया कि ये जिहाद इस्लाम के लिए है और इसके मुजाहिदीन दुनिया के सारे मुसलमानों की फिक्र रखते हैं। उन्हीं की कोशिशों से अफगान जिहाद दुनिया भर में फैला और दुनिया के हर कौने से मुसलमान अफगानिस्तान लड़ने पहुंचे।

अफगानिस्तान के जिहाद ने अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम को इस दौर की जिहादी तहरीकों का सबसे अहम काइद बनाया। उन्होंने जिहाद में हिस्सा लेकर उनकी तब्लीग करके और जिहाद के बारे में जो गलतफहमियाँ थीं, उन्हें दूर करके वो आने वाली नई नस्लों के लिए एक मिसाल बन गए और उन्होंने एक बार कहा था मुझे लगता है कि मैं 9 साल का हूँ। साढ़े सात साल मेरी ज़िंदगी के अफगान जिहाद में गुज़रे और डेढ़ साल फिलिस्तीन के जिहाद में और मेरी बाकी की उम्र की कोई हैसियत नहीं। 24 नवम्बर 1990 पेशावर में जुमे के दिन वोह अपने दो बेटों मुहम्मद और इब्राहीम के साथ जुमे की नमाज़ पढ़ने जा रहे थे, उसी वक्त उनकी कार को 20 किलो टी.एन.टी. से उड़ा दिया गया। कार के परखच्चे उड़ गए। उनके बेटों के जिस्म के टुकड़े कई 100 मीटर दूर पाए गए। एक बेटे की टांग टेलिफोन के तारों पर लटकी पाई गई। मगर अल्लाह के फज़लो-करम से शैख का बदन ज्यों का त्यों रहा और दिमाग में अन्दरूनी चोट की वजह से उनकी मौत हो गई। मुशाहिदीन (देखने वाले) गवाह हैं कि कई लोगों ने मुश्क की खुशबु जो उनके बदन से आ रही थी, को उस वक्त महसूस किया। शैख अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम को पावी के क़ब्रिस्तान में दफनाया गया जहां पर बहुत से शुहदा-ए-खुरासान की क़ब्रें हैं।

وَالَّذِينَ قُتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ فَلَنْ يُضِلَّ أَعْمَالَهُمْ (4)

“और जो अल्लाह की राह में मारे गए अल्लाह उनके आमालों को हर्गिज जाया नहीं करेगा। (सूर : मुहम्मद 4)



# मुकद्दमा—ए—किताब

## अब्दुल्लाह अज्जाम (शहीद रह.)

बेशक तमाम तारीफें अल्लाह तआला के लिए हैं। हम उसी की हम्द बयान करते हैं, उसी से मदद मांगते हैं, उसी से मग़फ़िरत तलब करते हैं और उसी के हुजूर तौबा करते हैं। अपने नफ़्स की शरारतों और आमाल की बुराईयों से अल्लाह की पनाह मांगते हैं। जिसे अल्लाह हिदायत दे उसे कोई भटकाने वाला नहीं और जिसे वोह गुमराह कर दे उसे कोई राह पर लगाने वाला नहीं। मैं इस बात की शहादत देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं, वह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं। और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (ﷺ) उसके बन्दे और रसूल हैं। ऐ अल्लाह ! काम वही आसान है जिसे आप आसान फरमा दें और अगर आप चाहें तो ग़म सहना भी आसान हो जाए।

खिलाफ़त बाकी नहीं रही, 1300 साल की इस्लामी हुकूमत के बाद एक अज़ीम साम्राज्य जिससे दुनिया कभी डरती थी। वोह लोग जिन्हें अल्लाह का आख़िरी पैग़ाम मिला। वोह दीन जो सारे जहान वालों के लिए था। वोह आज कहां है? नजासून (नजिस, नापाक—यह दो तरह के होते हैं, एक रूहानी व दूसरे जिस्मानी। जिस्मानी नजासत से तो हर इन्सान का साबिका पड़ता है, मगर रूहानी नजासत यहूदो—नसारा व मुशरिकीन के साथ ख़ास है) ने मुसलमान को धोखा देने के लिए हर जगह कठपुतली सरकारें बिठा दीं। साम्राज्यवाद ने नया चेहरा बदल लिया और उन्होंने मुसलमानों को इस तरह बाँटें जैसे दावत में लोग खाना अपने खास लोगों के बीच बाँटते हैं। इससे बड़ी जिल्लत उन लोगों के लिए और क्या हो सकती थी जो इन्सानियत को बचाने के लिए पैदा किए गए थे, उन्हीं को लुकम—ए—तर समझकर खाया जा रहा था। उम्मत—मुस्लिम किस तरह हालात के नाजुकपन को समझेंगे कि उनके घरों को तोड़ा जा रहा है और उनके पड़ोसी हंस रहे हैं और फिर एक बार कहूंगा लोग किस तरह हालात के नाजुकपन को समझेंगे।

وَالَّذِينَ كَفَرُوا بِعُضُفِهِمْ أَوْلِيَاءَ بَعْضٌ إِلَّا تَفْعَلُوهُ تَكُن فِتْنَةً فِي  
الْأَرْضِ وَفَسَادٌ كَبِيرٌ (73)

और काफ़िर एक दूसरे के मददगार और साथी हैं (पस, याद रखो!) अगर तुम उन (मुसलमानों) की मदद न करोगे तो मुल्क में एक (बहुत बड़ा) फ़ित्ना और बहुत बड़ा फ़साद खड़ा हो जाएगा। (तर्जुमा — सूर अनफाल, आयत 73)



أَجَعَلْتُمْ سِقَايَةَ الْحَاجِّ وَعِمَارَةَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ كَمَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَجَاهَدَ فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا يَسْتَوُونَ عِنْدَ اللَّهِ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظَّالِمِينَ (19) الَّذِينَ آمَنُوا وَهَاجَرُوا وَجَاهَدُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ بِأَمْوَالِهِمْ وَأَنْفُسِهِمْ أَكْظَمُ دَرَجَةً عِنْدَ اللَّهِ وَأُولَئِكَ هُمُ الْفَائِزُونَ (20) يُبَشِّرُهُمْ رَبُّهُمْ بِرَحْمَةٍ مِنْهُ وَرِضْوَانٍ وَجَنَّاتٍ لَهُمْ فِيهَا نَعِيمٌ مُّقِيمٌ (21) خَالِدِينَ فِيهَا أَبَدًا إِنْ اللَّهُ عِنْدَهُ أَجْرٌ عَظِيمٌ (22)

क्या तुमने हाजियों को पानी पिलाना और मस्जिदे-हराम को आबाद करना उस शख्स के अमल जैसा समझ लिया है जो अल्लाह और यौमे-आखिरत पर ईमान रखता है और अल्लाह की राह में जिहाद करता है? अल्लाह के नज़दीक तो यह लोग बराबर नहीं हैं। और अल्लाह ज़ालिम लोगों को हिदायत नहीं दिया करता। जो लोग ईमान लाए और हिजरत की राह में जानो-माल से जिहाद करते रहे, अल्लाह के यहां तो उन्हीं का दर्जा बड़ा है, और यही लोग कामयाब हैं। उनका रब उन्हें अपनी रहमत और खुशनूदी और ऐसी जन्नतों की बशारत देता है जहां उनके लिये दाईमी नेअमतें होंगी, उनमें यह हमेशा रहेंगे, बेशक अल्लाह के पास बड़ा अज़्र है।

(सूर : तौबा आयत 19-22)

अब्दुल्लाह इब्ने मुबारक रह. ने फुजैल इब्ने अयाद को खत में लिखा “ऐ हरम में इबादत करने वाले अगर तू हमारे साथ जंगों (जिहाद) में शिरकत करता तो तू जान लेता कि जिहाद के मुकाबले में तेरी इबादत बच्चों जैसी है। (यानी बहुत मामूली है) तूने जो भी आंसू इस इबादत में बहाए हैं, हमने उसकी जगह खून के कतरे बहाए हैं। तुम आबिद अपनी ये इबादत करके इबादत का मज़ाक उड़ा रहे हो। जबकि मुजाहिदीन अपनी जान और माल कुर्बान कर रहे हैं।

खैर, मैंने असलन जब ये फतवा लिखा था तो ये अपने मौजूदा हज्म (बहुत बड़े मक़सद) से कहीं बड़ा था। फिर मैंने उसे फज़ीलतुशशैख अब्दुल अज़ीज़ बिन बाज़ (रह.) के सामने पेश किया और उन्हें पढ़कर सुनाया। आपने उसे पसन्द किया, इसकी तार्फ़ की और कहा कि ‘यक़ीनन ये उम्दा है।’ लेकिन उनकी राय ये थी कि मैं इसे कुछ मुख़्तसर कर दूँ, वोह खुद इसका मुक़द्दमा लिखें और फिर उसे छपवा दिया जाए। चुनावे मैंने इसे मुख़्तसर किया, मगर फिर हज के अय्याम आ गए और शैख इब्ने-बाज़ मसरूफ़ रहे और अल्लाह का करना कुछ ऐसा हुआ कि ये फतवा दोबारा आपको दिखाने का मौक़ा न मिल सका। बाद में शैख इब्ने-बाज़ हफ़ीज़ उल्लाह ने जिहाद की मस्जिदे-बिन लादेन



और रियाज़ की जामा मस्जिद अल्कबीर में ये फतवा दिया कि आज अपनी जानों के साथ जिहाद में शिरकत फर्जे-ऐन है।

फिर मैंने ये फतवा आखिर में दिए गए छः ईजाफी सवालों के बगैर, ज्यों का त्यों काबिले-अहताराम शयूख अब्दुल्लाह अलवान, सईद हवा, मुहम्मद नजीब अल मतीई, दुक्कूर हुसैन हामिद हस्सान और उमर सैफ के सामने भी पेश किया और उन्हें पढ़कर सुनाया। उन सब अहले-इल्म ने उस फतवे से इत्तिफाक किया और बेशतर ने इस पर दस्तखत भी कर दिए। इसी तरह मैंने शैख मुहम्मद बिन सालेह बिन उसैमीन को भी ये फतवा पढ़कर सुनाया और आपने भी इस पर अपने दस्तखत कर दिए। नीज़, मुहतरम शैख अब्दुर्रज़ाक अफीफी, शैख हसन अय्यूब और दुक्कूर अहमद अस्साल ने भी ऐसे ही फतवे दिए।

फिर मैंने हज के अय्याम में मीना में वाक़ेअ मर्कज़, अत्तोइयतुल आअम्मा में खिताब किया, जहां पूरी इस्लामी दुनिया से तअल्लुक रखने वाले एक सौ से ज़्यादा उलमा को इसी फतवे का खुलासा सुनाते हुए मैंने कहा :

“तमाम सलफ व खलफ और इस्लामी तारीख के हर दौर में तमाम फ़क़हा और मुहद्दीसीन इस बात पर मुत्ताफ़िक रहे हैं कि :

अगर मुसलमानों की सरज़मीन के किसी गज़ भर हिस्से पर भी हमला हो, तो जिहाद हर मुसलमान मर्द व औरत पर फर्जे-ऐन हो जाता है। ऐसी सूरत में बेटा बाप की और औरत, शौहर की इजाज़त के बगैर निकलेंगे।”

फिर मैंने उनसे ये भी कहा कि मैं गुज़िश्ता तीन सालों से जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान में शरीक हूं और अपने तजुर्बात और मुजाहिदीन के अमराअ की आराअ (अमीरों के राय-मशिवरों) की रोशनी में पूरे वसूक से ये बात कहता हूं कि जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान को आज मर्दानेकार की ज़रूरत है। बस! ऐ उल-ए-किराम ! आप में से किसी को भी अगर इस राय पर कोई ऐतराज़ है तो बताएं?

किसी एक आलिम ने भी कोई ऐतराज़ नहीं किया, बल्कि दुक्कूर इदरीस ने ये कहा कि “मेरे भाई ! इस मसले में किसी को कोई इख़्तिलाफ नहीं।” चुनांचे, उलमा की उस भरपूर ताईद के बाद मैंने ये फतवा छपवाया है ताकि अल्लाह इसे हमारे लिए दोनों जहानों में नफे का बाइस बनाए और तमाम मुसलमानों को इससे फाएदा पहुंचाए।

अब्दुल्लाह अज़्जाम (शहीद रह.)



## हमलावर दुश्मन को मुसलमानों की सरज़मीन से निकालना अहमतरीन फ़र्ज़

बेशक तमाम तारीफें अल्लाह तआला के लिए हैं। हम उसी की हम्द बयान करते हैं, उसी से मदद मांगते हैं, उसी से मग़फ़िरत तलब करते हैं और उसी के हुज़ूर तौबा करते हैं। अपने नफ़्स की शरारतों और आमाल की बुराईयों से अल्लाह की पनाह मांगते हैं। जिसे अल्लाह हिदायत दे उसे कोई भटकाने वाला नहीं और जिसे वोह गुमराह कर दे उसे कोई राह पर लगाने वाला नहीं। मैं इस बात की शहादत देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं, वोह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं और मैं ग़वाही देता हूँ कि मुहम्मद (ﷺ) उसके बन्दे और रसूल हैं। दुरूदो—सलाम हों आप(ﷺ)पर, आप(ﷺ)की आल पर और आप(ﷺ)के तमाम अस्हाब रज़ियल्लाहु अन्हुम पर। अम्माबअद,

ये अल्लाह तआला की खास रहमत है कि उसने हमारे लिए इस्लाम को बतौर-दीन चुना, उसे तमाम ज़हानों के लिए बाइसे—रहमत बनाया, और सय्यिदुलमुर्सलीन (ﷺ) को इसके हमराह खातमुन्नबीय्यीन बनाकर भेजा। फिर जब आप (ﷺ) दलाइल व बराहीन (दलीलों व अमली कोशिशों) से इस दीन की हक्कानियत वाज़ेह फरमा चुके तो अल्लाह तआला ने तेग़ो—सना(तीरो—तलवार)से इस दीन की नुसरत फरमाई। इमाम अहमद रह. और तबरानी रह. एक सहीह हदीस में रसूलल्लाह (ﷺ) का ये फर्मान नक़ल करते हैं :

“मुझे क़यामत तक के लिए तलवार के साथ मबउस किया गया है, यहां तक कि अल्लाह वहदहू लाशरीक की इबादत की जाने लगे और मेरा रिज़्क मेरे नेज़े के साए तले रखा गया है और जिसने भी मेरे अम्र (तरीक़े) की मुखालिफ़त की, उसके लिए ज़िल्लत और पस्ती रख दी गई है और जिसने किसी क़ौम की मुशाबिहत इख़्तियार की वह उन्हीं में से है।”

(सहीहुल जामेअ—अस्सगीर लिल्अल्बानी—2828)



# जमीन की इस्लाह का दारोमदार “क़ानूने-दिफ़ाअ” पर रखा गया है।

अल्लाह हकीम व अलीम ने ज़मीन की इस्लाह का दारोमदार ‘क़ानूने-दिफ़ाअ’ पर रखा है, जिसका ज़िक्र कुर्आन इन अल्फ़ाज़ में करता है :

وَلَوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَفَسَدَتِ الْأَرْضُ وَلَكِنَّ اللَّهَ

ذُو فَضْلٍ عَلَى الْعَالَمِينَ (251)

“और अगर अल्लाह इन्सानों के एक गिरोह को दूसरे गिरोह के ज़रिए दिफ़ाअ न करता रहता तो ज़मीन फ़साद से भर जाती, लेकिन अल्लाह अहले-आलम पर बड़ा मेहरबान है।” (सूर : अलबक्रा-251)

ये बनी नूअ इन्सान पर अल्लाह की खुसूसी मेहरबानी है कि उसने उनके लिए दफ़अ-फ़साद (फ़साद के ख़ात्मे) का ये क़ानून जारी फ़र्माया और उसे हमारे लिए अपनी पाक किताब में बयान भी कर दिया है। ये “क़ानूने-दिफ़ाअ” दरअसल हक़ो-बातिल की कश्मकश ही का दूसरा नाम है। तमाम इन्सानियत की भलाई इसी मअरके से वाबास्ता है। हक़ की फरमारवाई और क़यादत इसी के ज़रिए क़ायम होती है और दुनिया में ख़ैर फैलाने का ज़रिया भी यही है। दीनी शआइर (निशानियां) और इबादतगाहें भी इसी की बदौलत महफूज़ हैं। इशदि-बारी-तआला है :

وَلَوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَهْذَمَتْ صَوَامِعُ وَبِيَعٌ وَصَلَوَاتٌ وَمَسَاجِدُ

يُذَكَّرُ فِيهَا اسْمُ اللَّهِ كَثِيرًا وَلَيَنْصُرَنَّ اللَّهُ مَنْ يَنْصُرُهُ إِنَّ اللَّهَ لَقَوِيٌّ عَزِيزٌ (40)

“और अगर अल्लाह इन्सानों के एक गिरोह को दूसरे गिरोह के ज़रिए दिफ़ाअ न करता रहता तो (नसारा के) ख़लवतख़ाने और गिर्जे और (यहूद) के मअबद (इबादतख़ाने) और (मुसलमानों की) वोह मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का नाम कसरत से लिया जाता है, सब मुन्हदम (ख़त्म) हो गए होते और जो अल्लाह की मदद करेगा, अल्लाह भी ज़रूर उसकी मदद करेगा। बेशक अल्लाह कुव्वतवाला और ग़ल्बेवाला है।” (सूर : हज : 40)

किताबुल्लाह के बेशुमार सफ़हात इस ‘क़ानूने-दिफ़ाअ’ या ‘क़ानूने-जिहाद’ की तफ़सीलात पर मुश्तमिल हैं, ताकि इस बारे में कोई इब्हाम (शक) बाक़ी न रहे कि हक़ के पास



अपने दिफाअ के लिए कुव्वत का होना एक नागुज़ीर अमर है। ये एक तारीखी हकीकत है कि कितनी ही बार हक़ सिर्फ़ इस वजह से पस्त और मग़लूब हुआ कि हक़वाले उसका साथ छोड़ गए और कितनी ही मर्तबा बातिल, बातिलवालों की हिमायत और कुर्बानियों की ग़दम सरबुलन्द हो गया।

## जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की इमारत के दो बुनियादी सुतून

जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की इमारत दो बुनियादी सुतूनों पर कायम होती है :

1. सब्र, जो दरअसल क़ल्ब व रूह की शुजाअत का मज़हर है।
2. सख़ावत, जो अल्लाह की राह में जिस्म व जान लगा देने का दूसरा नाम है। (और बेशक जान कुर्बान करने से बढ़कर सख़ावत और क्या हो सकती है?)

ईमाम अहमद रह. एक सहीह हदीस में रिवायत करते हैं :

“ईमान सब्र व सख़ावत का नाम है।”

(सिलसिलतुल-अहादीस, अस्सहीह लिल, अलबानी-554)

हाफ़िज़ इब्ने-तैमिया रह. फर्माते हैं :

“चूँकि बनी नूअ इन्सान के दीन व दुनिया, दोनों की भलाई शुजाअत व सख़ावत के बग़ैर नामुमकिन है, इसलिए अल्लाह तआला ने ये बात वाज़ेह फरमा दी है कि जो कोई भी जिहाद में जान खपाने से हाथ खींचेगा, अल्लाह तआला उसे हंटाकर किसी ऐसे को उसकी जगह ले आएँगे जो इस फरीज़े को अदा करता हो, चुनांचे, अल्लाह तआला का इर्शाद है:

إِلَّا تَنْفِرُوا يُعَذِّبْكُمْ عَذَابًا أَلِيمًا وَيَسْتَبْدِلْ قَوْمًا غَيْرَكُمْ وَلَا تَضُرُّوهُ

شَيْئًا وَاللَّهُ عَلَى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ (39)

“अगर तुम न निकले तो अल्लाह तुम्हें दर्दनाक अज़ाब देगा और तुम्हारी जगह किसी और गिरोह को ले आएगा और तुम उसे कुछ नुकसान न पहुंचा सकोगे और यक़ीनन अल्लाह हर शै पर कादिर है।” (सूर : तौबा : 39)

(मजमूअ-अल फ़तावा, जिल्द-28, सफ़ा-157)



## दो बदतरीन सिफ़ात

जान व माल खपाने की इसी अहमियत के पेशेनज़र रसूलल्लाह (ﷺ) ने बुख़ल और बुज़दिली को (जो सखावत और शुजाअत की ज़िद (उलट) हैं) बदतरीन सिफ़ात करार दिया है, क्योंकि ये अफ़राद के बिगाड़ और मुआशरों की तबाही का बाइस बनती है। रसूलुल्लाह (ﷺ) फरमाते हैं :

“दो बदतरीन सिफ़ात जो किसी इन्सान को हो सकती है वोह हैं शदीद बुख़ल और सख़्त बुज़दिली।” (अबूदाऊद किताबुल-जिहाद, सनद सही)

मुसलमानों की तवील तारीख़ इस बात पर शाहिद है कि हमारे सल्फे-सालेहीन जिहाद के इसी इलाही क़ानून पर अमल पैरा रहे। नतीजतन अल्लाह ने दुनिया की क़यादत का ताज़ उन्हीं के सिर पर रखा और इन्सानियत की रहनुमाई भी उन्हीं के नसीब में आई। अल्लाह तआला फरमाते हैं :

وَجَعَلْنَا مِنْهُمْ أَئِمَّةً يَهْدُونَ بِأَمْرِنَا لَمَّا صَبَرُوا وَكَانُوا بِآيَاتِنَا يُوقِنُونَ (24)

“और जब उन्होंने सब्र किया और हमारी आयत पर यक़ीन लाते रहे तो हमने उनके अन्दर ऐसे पेशवा पैदा कर दिए जो हमारे हुक्म से रहनुमाई करते थे”  
(सूर : सज्दा : 24)

इसी तरह एक सहीह हदीस में है कि रसूलल्लाह (ﷺ) ने फरमाया :

“इस उम्मत का पहला हिस्सा जुहद (दुनिया से बेरुबती) और यक़ीन की वजह से दुरूस्त था और इसका आखिरी हिस्सा बुख़ल (कंजूसी) और (लम्बी-चौड़ी) तमन्नाओं की वजह से हलाक होगा।”

(अहमद, तबरानी, फ़िल अवसत लि बैहकी, सहीहुल जामेअ अस्सगीर-3845)

अस्लाफ़ के उस सुनहरी दौर के बाद मुसलमानों की जो नस्लें आई वो क़वानीने-इलाही को छोड़ बैठे। उन लोगों ने अल्लाह को भुलाया तो अल्लाह ने भी उन्हें भुला दिया और उन्होंने अहकामाते-शरियत की नाक़दरी की तो वह खुद भी बेवक़अत होकर रह गए

فَخَلَفَ مِنْ بَعْدِهِمْ خَلْفٌ أَضَاعُوا الصَّلَاةَ وَاتَّبَعُوا الشَّهَوَاتِ

فَسَوْفَ يَلْقَوْنَ غَيًّا (59)

“फिर अगली नस्लों के बाद ऐसे नाख़ल्फ़ उनके जानशीन हुए कि उन्होंने



नमाज़ जाए कर दी और नफ़्सानी ख़्वाहिशात के पीछे पड़ गए, सो वोह अनक़रीब नुक़सान उठाएंगे।” (सूर : मरयम : 59)

उनकी बदआमालियां उनके लिए खुशनुमा बना दी गई और ख़्वाहिशात की पैरवी ही उनका तरीक़-ए-ज़िंदगी बन गया। रसूले-अकरम (ﷺ) इर्शाद फ़र्माते हैं :

“यक़ीनन अल्लाह तआला नफ़रत करते हैं हर ऐसे शख़्स से जो अक्खड़ मिज़ाज़ मुतकब्बिर हो, (खा-खाकर) जिसका जिस्म फूल चुका हो, बाज़ारों में फिज़ूल बातें करते जिसका वक़््त गुज़रता हो, जो रात भर मुर्दा लाश की तरह (गाफ़िल पड़ा रहता) हो, दिन को गधे की तरह (दुनिया के धंधों में लगा रहता) हो, दुनिया का तो ख़ूब इल्म रखता हो मगर आख़िरत के मामले में बिल्कुल जाहिल हो।”

(सहीहुल जामेअ अस्सगीर- 1878)

## जिहाद, एक फरीज़ा-ए-गुमशता

उम्मत-मुस्लिमा ने जिन फराइज़ व वाजिबात को भुला दिया, पसे-पुश्त डाल दिया, उनमें सबसे अहम जिहाद का गुमशुदा फरीज़ा है। जब मुसलमानों की अमली ज़िंदगी से जिहाद निकल गया तो वोह रसूलल्लाह (ﷺ) की पेशीनगोई के ऐन मुताबिक सैलाबी पानी के झाग की तरह बेवज़न व बेहक़ीक़त होकर रह गए :

“क़रीब है कि (कुफ़्र की) क़ौमें तुम्हारे ख़िलाफ़ जंग करने के लिए एक-दूसरे को इस तरह दावत देकर बुलाएंगी जिस तरह भूखे एक-दूसरे को दस्तरख़्वान पर दावत देकर बुलाते हैं।” इस पर एक पूछने वाले ने पूछा कि, क्या उस वक़््त ऐसा हमारी क़िल्लते-तादाद की वजह से होगा ? आप (ﷺ) ने फ़र्माया : “(नहीं) बल्कि उस वक़््त तो तुम ज़्यादा तादाद में होगे, लेकिन तुम सैलाबी पानी के झाग की तरह होगे और अल्लाह तआला तुम्हारे दुश्मनों के दिलों से ज़रूर ही तुम्हारी हैबत ख़त्म कर देंगे” तो पूछने वाले ने पूछा : या रसूलल्लाह (ﷺ) ! ये कमज़ोरी क्या होगी ? फ़र्माया “दुनिया की मुहब्बत और मौत की कराहत।” एक और रिवायत में ये अल्फाज़ भी मिलते हैं : सहाबा रजि. ने पूछा : या रसूलल्लाह (ﷺ) ! ये कमज़ोरी क्या होगी ? आप (ﷺ) ने फ़र्माया : “तुम्हारा दुनिया से मुहब्बत करना और तुम्हारा क़िताल को नापसन्द करना।” (अबूदाऊद, अहमद, रिवायत सही)

(नाटो अफ़वाज़ का, अमेरिका की क़यादत में मुत्तहिद होकर मुस्लिम दुनिया पर छा जाना क्या इस हदीस के ऐन-मुताबिक नहीं है? (मुतर्जिम))



# ❧ जिहाद की तअरीफ ❧

बुनियादी तौर पर यह बात जान लेनी चाहिए कि किसी हुक्म की शरई हैसियत और उसका शरई मुक़ाम उसकी शरई तअरीफ़ से मालूम हो सकता है। लुगवी मफ़हूम (शाब्दिक अर्थ) पर शरई अहक़ाम का दारोमदार नहीं होता।

देखिये, सलात का लुगवी मफ़हूम सिर्फ़ दुआ है। सिर्फ़ दुआ को शरई नमाज़ नहीं कहा जा सकता। इसी तरह ज़कात का शरई मफ़हूम पढ़ने और तज़किया के हैं, लेकिन इसका एक शरई इस्तलाही मफ़हूम और तअरीफ़ है। अहक़ाम का दारोमदार उस शरई मफ़हूम पर है। इसी तरह लफ़्जे—सोम बमअना रोज़ा है। इसका लुगवी मफ़हूम यह है कि एक घड़ी तक खाने—पीने को तर्क कर देना। इस मफ़हूम में इन्सानों के अलावा हैवानात का दाना पानी तर्क करना भी सोम और रोज़े में दाख़िल है। लेकिन इसका एक शरई इस्तलाही मफ़हूम है जिस पर अहक़ामात का मदार है और शरअन उसी का ऐतबार है। इसी तरह हज का लुगवी मअना क़स्द (इरादा) है। अब एक आदमी शहर या घर जाने का क़स्द करता है और फिर कहता है कि मैं हज कर रहा हूँ क्योंकि हज से मतलब क़स्द है और मैंने क़स्द कर लिया है, लेकिन हज का एक शरई मफ़हूम है, शरिअते—मुक़द्दसा में उसी का ऐतबार है और लुगवी मफ़हूम लेना शरअन बेकार है और इस तरह की तावीलात करने वाला ग़द्दार है।

बिल्कुल इसी तरह लफ़्जे—जिहाद है। इस दौर के इस मज़लूम लफ़्ज़ का लुगवी मफ़हूम तो मेहनत है, लेकिन इसका एक शरई मफ़हूम है और उसकी एक इस्तलाही तअरीफ़ है। अब इस शरई मफ़हूम को छोड़कर उसके लुगवी मफ़हूम को आम करना और उसकी आड़ लेकर शरई जिहाद से रूकना और उसमें सुस्ती करना और तरह—तरह की तावीलात में अवामुन्नास को उलझाए रखना जिहाद पर जुल्म के साथ—साथ मुसलमानों की बदख़्वाही और काफ़ि़रों की ख़ैरख़्वाही के मुतरादिफ़ होगा, जिससे हर मुसलमान को अहतराज़ करना लाज़िम है।

अब मैं चन्द तारीफ़ात (परिभाषाएं व मिसालें) आपके सामने रखता हूँ। सबसे पहले मैं नबी अकरम सल्ल. की ज़बाने—मुबारक (से की गई जिहाद) की तअरीफ़ पेश करता हूँ, ख़ूब अच्छी तरह से सुन लीजिए,—

(एक) सहाबी रज़ि. ने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ)! सबसे अफ़ज़ल हिजरत कौनसी है? नबी अकरम (ﷺ) ने फरमाया, बेहतरीन हिजरत जिहाद की हिजरत है। सहाबी रज़ि. ने पूछा कि जिहाद क्या चीज़ है? नबी (ﷺ) ने फरमाया, कि जिहाद यह है कि तुम बवक्ते—मुक़ाबला कुफ़्फ़ार से लड़ो और उस रास्ते में न ख़्यानत करो और ना बुज़दिली दिखाओ। (कन्ज़ुल—उम्मा, जिल्द—1, सफ़ा—76)

..पूछा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ)! जिहाद क्या चीज़ है? नबी (ﷺ) ने फरमाया, कि जिहाद यह है कि तुम मुक़ाबले के वक्त कुफ़्फ़ार से लड़ो, कहा गया कि



अफ़ज़लतरीन जिहाद कौनसा है? नबी (ﷺ) ने फरमाया, कि उस शख्स का जिहाद जिसका घोड़ा कट मरे और खुद उसका खून गिर जाए.. (यानि वो शहीद हो जाए)  
(कन्ज़ुल-उम्मा, जिल्द-1, सफ़ा-27)

मुसनद अहमद की एक सही हदीस में है कि एक शख्स ने रसूलुल्लाह (ﷺ) से पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ)! यह अल्लाह के रास्ते का जिहाद क्या होता है? नबी (ﷺ) ने फरमाया, कि काफ़िरों से लड़ने का नाम जिहाद है।

जिहाद कसर-ए-जीम के साथ लुगत में मअनी मेहनतो-मशकत है और इस्तलाहे-शरअ में कुफ़ार से लड़ने में अपनी पूरी ताक़त को इस्तेमाल करने का नाम जिहाद है। (फतहुल-बारी, जिल्द-6, सफ़ा-4)

दीन के दुश्मनों को मग़लूब करने और कुफ़ार से लड़ने का नाम जिहाद है।  
(शरह, शरअतुल-इस्लाम, सफ़ा-517)

यानि, दुश्मनाने-इस्लाम से लड़ने का नाम जिहाद है।

(क़ामूस-मादह, जिल्द-5)

मुहतरम भाईयों, दोस्तों और बुर्जुगों! यह शरई जिहाद है। इसमें हर तअरीफ़ में काफ़िरों से लड़ने का लफ़्ज़ मौजूद है। लिहाज़ा जो शरह ने समझाया और फिर सलफ़ ने समझकर तअरीफ़ की है और किताबों में मौजूद है उसी पर ऐतमाद (भरोसा) रखो और किसी के खुतबात या बेजा तावीलात से धोखा न खाओ।

## जिहाद की फिर दो किस्में हैं।

एक इक़दामी है, जिसके लिये चन्द शराईत फुक्ह-ए-किराम ने बयान की हैं जो दर्जे-ज़ैल हैं:

(1) सरपरस्त की इजाज़त हो।

(2) बअज़ के यहां ताक़त का तवाज़ुन (सन्तुलन) हो।

(3) अमीर आम हो।

(4) दअवते-इलल-इस्लाम हो, याद रहे जिहाद जिस दअवत पर मौकूफ़ है, उसके तीन जुम्ले हैं

(1) इस्लाम कुबूल कर लो (2) जिज़्या दो, अगर नहीं .....

(3) तो क़िताल के लिये तैयार हो जाओ!

यह दअवत भी उन लोगों के लिये ज़रूरी है जो किसी तौर पर इस्लाम से वाकिफ़ ना हों और न उन्होंने इस्लाम का नाम सुना हो, लेकिन जिन लोगों को एक बार दअवत पहुंची है या उन्होंने किसी नश्रयाती ज़रिये (रेडियो, टी.वी व अख़बारात) से इस्लाम का नाम सुना है, उनको दोबारा मैदाने-जिहाद में दअवत देना सिर्फ़ मुस्तहब है।

आजकल दअवतो-तब्लीग़ के नाम से जो एक अमल चल रहा है उसका दायरा-



ए-कार सिर्फ़ मुसलमानों में है और इस्लाहो-रहनुमाई और तरगीब तक महदूद है। यह बअजो-नसीहत व खैरख्वाही है, जिहाद वाली दअवत नहीं है और ना जिहाद वाली दअवत के साथ उसकी कोई मुशाबिहत (समानता) है।

बहरहाल, जिहाद की यह किस्म इक़दामी व हुजूमी है, जो फ़र्जे-किफ़ाय़ा के दर्जे में है यानि यह जिहाद दुनिया भर में कहीं ना कहीं जरूर होना चाहिए वरना सारी उम्मत गुनाहगार हो जाएगी। गोया यह एक फ़रीज़ा है जो पूरी उम्मत के जिम्मे है।

जिहाद की दूसरी किस्म दिफ़ाई है कि कुफ़्र ने किसी इस्लामी खित्ते पर हमला किया हो और मुसलमान दिफ़ाअ में लड़ रहे हों, अगर वो नाकाफ़ी हों तो रफ़्ता-रफ़्ता पूरी दुनिया के मुसलमानों पर जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाता है। इस किस्म के जिहाद के लिये कोई शर्त नहीं ...

एक जरूरी बात यह भी समझ लें कि जिहाद की तअरीफ़ में बअज़ उल्माअ ने जिहाद की बअज़ अन्वाअ (किस्मों) का ज़िक्र भी किया है यानि जिहाद की,

एक किस्म, जिहाद-बिल-माल है

दूसरी किस्म, जिहाद-बिल-लिसान है

तीसरी किस्म, जान से जिहाद करना है।

अर्ज़ यह है कि जिहाद बिल लिसान वोह है जिससे मैदाने-जिहाद का फ़ायदा हो यानि जिहाद की तरगीब हो, तक्ररीर हो, फ़ज़ाईले-जिहाद का तज़क़िरा हो, जिहाद से मुत्तालिफ़ जोशीले अशआर हों और जानदार नज़्में हों, कुफ़्र को धमकियां हों, पुरसोज़ ललकार हो, यह जिहाद बिल लिसान है। ना कि यह कि वो घण्टे-घण्टे भर तक्ररीरें व बयान तो खाने-पीने और पहनने के आदाब पर हो और फिर कहा जाए कि मैंने जिहाद बिल लिसान किया। यह नेक काम तो हो सकता है लेकिन जिहाद बिल लिसान नहीं।

इसी तरह जिहाद बिल माल यह है कि आपके माल से मैदाने-जिहाद और मुजाहिदीन को फ़ायदा पहुंच, ना कि यह कि आपने किसी फ़कीर को पैसा-ज़कात अदा किया और फिर कहा कि मैंने जिहाद बिल माल किया, यह नेक काम तो है लेकिन जिहाद बिल माल नहीं।

इसी तरह बाक़ी चीज़ों के बारे में सोच लीजिए कि जान से जिहाद यह है कि उस जान को मैदाने-जिहाद में लगा दो और उस मुक़द्दस अमल में उसे खपा दो। जिहाद बिल नफ़्स यह है कि जिसमें नफ़्स वास्ता और ज़रिया व अअला बन जाए, उसी मैदाने-जिहाद के लिये! ना कि यह कि मैदाने-जंग तो ख़्वाब में भी ना देखा हो और कहंता फिरता हो कि मैं मुजाहिद हूं, जिहाद कर रहा हूं। और अगर हर नेक अमल करने वाले को आप मुजाहिदे-शरई कहेंगे तो फिर यकीनन (फ़ज़ल्ललाहुल मुजाहिदीना अलल काईदीना अजरन अज़ीमा) (अल्लाह तआला ने मुजाहिदीन की फ़ज़ीलत बख़्शी है, जिहाद से पीछे रह जाने वालों पर, एक बड़े अज़्र के ज़रिये) का मफ़हूम समझना मुहाल हो जाएगा, कि मुजाहिद का दर्जा बैठने वाले के मुकाबले में बड़ा है, क्योंकि बैठने वाले भी सहाब-ए-



किराम रज़ि. थे, जिनके अअमाल सौ फ़ीसदी सही थे, तहज्जुदगुज़ार थे, रोज़ेदार थे, हर इबादत में मशगूल थे, उनको इस हालत में मुजाहिदीन क्यों नहीं कहा गया, बल्कि मुजाहिदीन की सफ़ों से उस वक्त उनको ख़ारिज क्यों किया? और सिर्फ़ उनको मुजाहिद क्यों करार दिया गया जो कुफ़्रार के मुकाबले में निकले थे? मअलूम हुआ कि मैदाने-जिहाद में जानेवाला मुजाहिद होता है, हर आबिद मुजाहिद नहीं होता !

मेरे भाई और मेरे दोस्त ! जिहादे-शरई करने वाले को मुजाहिद कहो । जिहादे-लुगवी यानि किसी नेक मेहनत जिसमें जिहाद जैसा सवाब मिल जाता हो तो यही ग़नीमत है कि जिहाद के सवाब की तरह उनको सवाब हासिल हो गया। ना कि यह कि वो खुद ब खुद मुजाहिद बन गया कि जहाज़ के करीब भी ना गया हो और वो पायलट बन गया । आजकल तो इस मुक़द्दस लफ़्ज़ (जिहाद) को खेल तमाशा बनाया जा रहा है। कहते हैं कि मच्छर के खिलाफ़ जिहाद, मलेरिया के खिलाफ़ जिहाद, नाख्वान्दगी के खिलाफ़ जिहाद, जनसंख्या के खिलाफ़ जिहाद, महंगाई के खिलाफ़ जिहाद, वगैरह-वगैरह। और कभी उन्हें यह कहने की जुरात ना हुई कि अमेरिका के खिलाफ़ जिहाद, रूस-बरतानिया-डेनमार्क व आस्ट्रेलिया के खिलाफ़ जिहाद, इज़राईल के खिलाफ़ जिहाद, और हर सरकश, ताग़ूत, काफ़िर, मुशिरक के खिलाफ़ जिहाद !

(जंगे-खन्दक, अज़ मौलाना फ़ज़ल मुहम्मद, सफ़ा-13)

इसी तरह जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की जम्हूरी तअबीर भी अस्त्रे-नौ का एक बड़ा अलमिया(दुखद पहलू) है। इससे कौन इन्कार कर सकता है कि जम्हूरी अमल अवाम की सोच और ख़्वाहिशात को पूरा करने के लिये अवाम की नुमाइन्दगी का नाम है। ख़्वाहिशात की यह मुहब्बत अवामुन्नास(आम लोगों) के लिये एक पसन्दीदा चीज़ बना दी गई है

زَيْنٌ لِلنَّاسِ حُبُّ الشَّهَوَاتِ (14)

(ज़ुय्यिना लिन्नासि हुब्बुशशहवात.)

(आले-इमरान-14)

जबकि जिहाद अल्लाह के कलमे की सरबुलन्दी और फ़ित्ने के खात्मे के लिये आग व ख़ून से गुज़रने और कुबानियां देने का नाम है और यह काम इन्सान को तब्बन नागवार है ।

وَهُوَ كُرْهُ لَكُمْ (216)

(वहुवा कुरहुल्लकुम)

(अलबकरह-216)

अब भला लोगों को उनकी ख़्वाहिशात की तकमील की जद्दोजहद में मुनहमिक करना, उनसे जानो-माल की कुर्बानियां लेने की तरह कैसे हो सकता है ? और यह बात तो अमलन भी नज़र आती है कि जम्हूरी अमल, अपने शुरकाअ के मेअयारे-ज़िन्दगी को बढ़ाता है, जबकि जिहाद फ़िक्रो-क़नाअत की आजमाईश लाता है। कहां, उस्व-ए-रसूल (ﷺ)



जिसकी पैरवी दुनिया की मुहब्बत को दिल से निकालती है और कहां मुस्लिम मुआशरों में मेअयारे-ज़िन्दगी को बुलन्द करने की खातिर चलाई जाने वाली जम्हूरी जदोजहद, जिसमें माद्दी तरक्की (ऐशो-इशरत) असल ज़िन्दगी है, जहां मफ़ादात ही वो पैमाना हैं जिस पर रियासत व जम्हूर के तअल्लुक को परखा जाता है, हाकिम व मुहकम (राजा व प्रजा) के दरमियान यही रिश्ता है, क़यादत और अवाम के बीच यही मीसाक़े-वफ़ा है जो उसे पूरा करे, उसकी हिमायत की जाएगी। जो अवाम की झोली को मराआत व सहूलियात से ना भर सके उसका अमल काबिले-इत्तिबाअ नहीं। सारा जम्हूरी फलसफ़ा और उस छतरी के तहत कायम इदारे और एनजीओज वगैरह भी इसी अक़ीदे के फ़रोग का वसीला हैं।

हकीक़त में अमल को इन्साऩी बहबूद (मानव-विकास) वगैरह के खुशनुमा नाम देकर उम्मत को बड़े मक़ासिद से दूर कर दिया गया है। अब्बल तो यह सारी फ़लाही मुहिमात (लफ़्ज़े-फ़लाही का इससे बढ़कर ग़लत इस्तेमाल मुम्किन नहीं) बिलअसल सरमायादारी (पूंजीवाद) के फ़रोग, मुख़ालिफ़ते-शरअ और अहले-मग़रिब की इक़दार (सत्ता) की तरवीज के लिये होती हैं ताहम, अगर अवामी बहबूद (अवाम की तरक्की) के नाम पर नेकी कर भी रहे होते हैं तो उस ख़ैर से जो शर, वो हासिल करना चाहते हैं वो सिर्फ़ इतना है कि हमें फ़िक़रे-दुनिया में मशगूल कर दिया जाए, हम माद्दी तरक्की की दौड़ में मगन हो जाएं, और उन मुहिमात से अलग रहें जो कुफ़्र की हुक्मरानी को दुनिया में चैलेन्ज करती हों और जिनसे उम्मते-मुस्लिमा के दिफ़ाअ का अहतिमाम किया जा सकता हो।

चन्द अरब डॉलर के खिलौने (जिन्हें तरक्कीयाती मन्सूबों का नाम दिया जाता है) उनसे अगर इस उम्मत, दअवत के कायदीन बनते हों, उसके नौजवानों को मुतबादिल (इसके बदल की) मसरूफ़ियात मिल जाती हों, उसकी ख़वातीन को (व क़र्नी फ़ी बुयूतिकुन्ना) और अपने घरों में ठहरी रहा, के बजाय अवामी खिदमत के नाम पर घरों से निकाला जा सके, हमारे बच्चों के लिये सेक्यूलर मग़रिबी तअलीमी इदारों के जाल फैलाए जा सकें, तो मग़रिब के लिये नुक़सान किस बात का? जो काम कोड़ों (सजा) से ना हो सकें उन्हें तोड़ों (पैसों) से हल करना अहले-मग़रिब ने सीख लिया है। दिल और दिमाग़ को डॉलर के ज़रिये फ़तह करने का यह सलीबी व सहयूनी मन्सूबा पूरे आलमे-इस्लाम में जारी है। ग़दी ज़राए से हमारा ही सरमाया लूटकर हमें ज़िल्लत के निवालों की सूरत में खिलाया जा रहा है। सरमाया, यहूदो-नसारा हमें पहले भी देते थे, लेकिन जिज़्ये की सूरत में, उस दौर में जब ख़िलाफ़त कायम थी, शरियत ग़ालिब थी, और इस तौर से देते थे कि (अय्यँदिवं वहुम सागिरून) अपने हाथों से और ज़लील होकर, और फुक्हा-ए-किराम के बक़ौल, इस हुक्मे-इलाही को पूरा करने के लिये किसी ज़िम्मी को मुलाज़िमत के ज़रिये उसे भेजने की इजाज़त नहीं होगी बल्कि वो खुद आएगा और इस हालत में जिज़्या अदा करेगा कि वो खड़ा होगा और वसूल करने वाला मुसलमान बैठकर वसूल करेगा।



मुस्लिम मुआशरों में मग़िबियत की अलमबरदारी करने वाले माद्दी तरक्की की मुहिमात को बड़ी इबादत करार देकर, मुसलमानों को सरमायादारी निज़ाम के कारिन्दे बनाकर शउरन या लाशउरन उन्हें अपने दिफ़ाअ और जिहाद जैसी अज़ीमुशान इबादत से दूर रख रहे हैं। कुफ़्र की यलग़ार और फ़ित्नों से बेपरवाह होकर मसाइल के हल की जद्दोज़हद और सहूलियात की फ़राहमी की मुहिमात में ज़िन्दगियां पिघला देना ऐसे ही हैं जैसे हम सांपों से बेपरवाह होकर जंगल से फूल चुनने लग जाएं। ज़ाहिर है सांपों की खुशी भी इसी में है लेकिन उसका क्या कीजिए कि फूलों ने मुरझाना है, सांपों ने अपनी रविश तर्क नहीं करनी, और खुद जंगल को एक दिन चटियल मैदान बन जाना है ! फिर इस सब कुछ का हतमी नतीजा ख़सिरहुनिया वल आख़िरा के सिवा और क्या निकलेगा?

अगर लोगों को तरक्की दिलाना, उनके माद्दी मसाइल हल करना, उनके मेअयारे-ज़िन्दगी को बुलन्द करना ही जिहाद होता तो इस्लाम के अहदे-ज़री में रसूलुल्लाह (ﷺ) और सहाबा-ए-किराम रिज़वानुल्लाह अलैहि अज़मईन बनु नज़ीर, बनु कुरैज़ा (यहूदी-नसारा की बस्तियों) से निपटने और तबूको-ताइफ़ के मअरके सर करने के बजाय (मआज़अल्लाह-अल्लाह की पनाह) ऐसा लायहिय-ए-अमल (तज़े-ज़िन्दगी) देते कि जिसमें पहले मदीने की गलियों को कुशादा व हमवार किया जाता, चौराहों में कुमकुमे और मशअलें रोशन होतीं, सड़कों और पुलों की इफ़ितताही तक़रीबात मुनअक्रिद की जातीं, तिजारती मेलों को फरोग मिलता, और कुछ नहीं तो कम से कम मस्जिदे-नबवी (ﷺ) के सुतूनों और फर्श ही को पक्का कर लिया जाता ! (ओ तरक्की के अलमबरदारों ! कुछ तो तुम्हारे पास इस बात का जवाब ज़रूर होगा?)

ईमान की उस मिसाली बस्ती में अगर कोई ज़रूरी इन्तिज़ामी काम हुए भी तो मेअयारे-ज़िन्दगी बुलन्द करने के लिये नहीं हुए। हुए भी तो तागूतों के सूदी क़र्ज़ों की बुनियाद पर नहीं हुए, यहूदी-नसारा की मुशावरतों और तरबियती वर्कशापों के ज़ेरे-साए नहीं हुए, कुफ़्फ़ार को अपने बराबर की कुर्सियों पर बैठाकर नहीं हुए, ना ही ऐसे आलम में हुए कि इस्लाम और उसके क़वानीन मग़लूब हों, मुस्लिम सरज़मीनों पर सलीबियों और सहयूनियों ने लश्करकशी कर रखी हो, मुसलमान कैदियों से कुफ़्फ़ार के अकुब्बत-खाने (जेलखाने) आबाद हों, यहूद अर्जे-मुक़द्दस पर काबिज़ हों, बल्कि यह नागुज़ीर इन्तिज़ामी काम तब हुए जब मअलूम दुनिया का दो-तिहाई हिस्सा इस्लाम के कब्ज़े में था, अल्लाह का दीन ग़ालिब था, इस्लामी सरहदे महफूज़ो-मामून थीं और दुनिया में कोई एक मुसलमान ऐसा ना था जिसे काफ़िरों ने कमज़ोर पाकर दबा रखा हो।

आज जबकि पौने-दो अरब के करीब मुसलमान सबके सब मुसतज़अफ़ीन (लकवे के मारों) की सी ज़िन्दगी गुज़ार रहे हों, इस्लाम के क़वानीन सिर्फ़ किताबों में हों, हमारे बारे में पॉलिसियां सात समुन्दर पार से बनकर आती हों, ऐवानों में शरीअत के



सिवाहर भलाई पर बात हो सकती हो, हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई बराबर की नशिस्तों पर बैठकर मिल्लत के फ़ैसलों में शरीक होते हों, एनजीओज़ और मुल्की व ग़ैर मुल्की इदारों को हर काम की खुली छूट हो, ऐसे में तालीम के नाम पर मरिबी सेक्यूलर इदारों का खुल जाना, इत्तिलाअत की अहमियत के पेशे-नज़र कम्प्यूटर नामी एक आअले के ज़रिये गली-गली मुहल्ले-मुहल्ले कहवाखानों का फैल जाना, बहबूदे-आबादी के नाम पर नस्लकुशी की मुहिमात का आम हो जाना, तरकियात और इमदाद के नाम पर बैनुलअकवामी सूदी जाल में उलझ जाना, अजीब नहीं लगता। अजीब यह लगता है कि इसे ही जिहाद करार दे दिया जाए ! सारी तवानाईयां और वसाईल उन्हीं मुहिमात में ग़र्क होकर रह जाएं जबकि उम्मत के दिफ़ाअ की खातिर मोर्चों में बैठे लोग निहत्थे पड़े रहें।

जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह के शरई मअनी का शउर ही हमें इस फ़रीजे की अदायगी का पाबन्द बना सकता है वरना तो हम किसी भी काम को जिहाद करार देकर इस अज़ीम फ़रीजे से सुबुकदोश हो सकते हैं। अगर सहाबी-ए-रसूल (ﷺ) ने भी जिहाद के इसी मफ़हूम पर इकतफ़ा किया होता और आग व ख़ून के दरियाओं को उबूर (पार) ना किया होता तो बिलाशुबहा यह दीन मदीने मुनव्वरा की हदों को उबूर ना कर पाता, बल्कि (मआज़अल्लाह) इसका नामो-निशान तक मिट जाता। यह जिहाद ही का मैदान था जब हमारे नबी (ﷺ) ने (बद्र की घाटी में) रोते गिड़गिड़ाते अपने रब से यह दुआ की कि ऐ अल्लाह ! अगर आज यह गिरोह हलाक़ हो गया तो (इस ज़मीन पर) तेरी इबादत न की जाएगी। ऐ अल्लाह ! अगर तू चाहे तो आज के बाद तेरी इबादत कभी न की जाए। (अरहीकुल-मख़्तूम-296)

बस, उम्मत के रहबरोँ को चाहिए कि वो जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की इस्तलाह को ऐसे मअनी ना दें कि नस्ले-नौ (नई नस्ल, जो पहले ही से मरिबियत के ज़ेरे-असर होने की बिना पर दीन से कोसों दूर है) मैदानाहा-ए-कारज़ार (जंग के मैदानों) को बिल्कुल ही भूला बैठें। बल्कि उन्हें चाहिए कि मुसलमानों को इस गमगुश्ता फ़रीजे पर उभारें, क्योंकि यह रसूलुल्लाह (ﷺ) की सुन्नत है।

अल्लाह रब्बुल इज़्जत ने इस उम्मत को चुना ही इस काम के लिए है, ये इस उम्मते-तौहीद का आलमगीर हदफ़ है जिसका हुसूल एक मुसलसल अमल है। अल्लाह और रसूलुल्लाह (ﷺ) की सरीह मुब्शिरात पर हमारा ईमान है, हक़ का ग़ल्बा हक़ है। यहूद व नसारा और मुशरिकीन की तहज़ीबें और उनका बनाया हुआ आलमी जबर का ढ़ांचा, ये सब दुनिया से मिट जाएंगे (इंशाअल्लाह) ये वोह गिरती हुई दीवारें हैं जिनका फिक्री और अमली सहारा लेना, उनसे मुकालमा करना, चाहे यह मुकालमा बैनुलमज़ाहिब हमआहंगी (सारे दीन एक जैसे) के नाम पर हो या बकाए-बाहिमी (आपसी सुरक्षा) के सफेद पर्चम तले, दरअसल जाहिली इक्रदार को एक हकीक़त के तौर पर तसलीम करना है। बातिल अफकार के उन सायों का अन्जाम भी दीवारों के साथ मुकद्दर है। "अगर आप हमारे माबूदों को कुबूल कर लें तो हम भी आपके खुदा की इबादत करेंगे" और



“हमारे खुदाओं को बुरा भला न कहा जाए ...” जाहिलियत का क़दीम मुतालबा है वही जाहिलियत आज मगरिबी अक़दार(इज़्ज़त) व तहज़ीब का ज़ेवर पहनकर, फिर हमारे सामने नमूदार हुई है और चाहती है कि हम उसकी बरतरी को कुबूल कर ले, इस्लाम के बजाए जमहूरियत हमारी असास(पहचान), शरिअत के बजाए सरमायादारी (पूंजीवाद) हमारा तरीक-ए-ज़िंदगी, कुर्आन के बजाए इन्सानी दसातीर (मुल्की संविधान) हमारा लाएहा-अमल, दीनी उखुव्वत(मुहब्बत)की जगह इन्सानियत हमारी पहचान, और बैते-काबा के बजाए बैते-अबयज़ (व्हाइट-हाउस) हमारा माअनवी और अमली किब्ला बन जाए। इस सारी जाहिलीयत के मुक़ाबले में बहैसियत मुसलमान हमारा जवाब वही है जो हमारे राज़िक ने हमें तालीम फर्माया है और जिसे हम अपने (वाहिद) सच्चे सहीफे में लिखा हुआ पाते हैं :

قُلْ يَا أَيُّهَا الْكَافِرُونَ (1) لَا أَعْبُدُ مَا تَعْبُدُونَ (2) وَلَا أَنْتُمْ عَابِدُونَ مَا

أَعْبُدُ (3) وَلَا أَنَا عَابِدٌ مَّا عَبَدْتُمْ (4) وَلَا أَنْتُمْ عَابِدُونَ مَا أَعْبُدُ (5)

لَكُمْ دِينُكُمْ وَلِيَ دِينِ (6)

“आप कह दीजिए कि ऐ काफ़िरों ! न मैं इबादत करता हूं उसकी जिसकी तुम इबादत करते हो, न तुम इबादत करने वाले हो उसकी, जिसकी मैं इबादत करता हूं। और न मैं इबादत करूंगा उसकी जिसकी तुम इबादत करते हो, और न तुम उसकी इबादत करने वाले हो जिसकी मैं इबादत कर रहा हूँ। तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन है और मेरे लिए मेरा दीन। ” (सूर : काफ़िरून)

अल्लाह का ये सच्चा दीन तौहीद के इक़रार और शिर्क से इंकार की असासो-बुनियाद पर क़याम है। इस दावत की सरबुलन्दी मतलूब है। तवानाइयों का राहे-मक़सूद में खपना, अमवाल का अहदाफे-मनसूस(कुर्आन-सुन्नत के दलाईल)में लगाना, अक्लमंदी की दलील है। आग जब भड़क उठे तो उसका बुझाना ही वक्त्त का अहमतररीन हदफ़ होता है, उसमें कूदने वाले भले तन्हा ही हों “यानारू कुमी बरदावं व सलामा” ऐ आग! सर्द हो जा और सलामती बन जा की सदा सुनते रहते हैं, बेघर क्यों न हों, “ला ताहज़न इन्नल्लाह मआना” ग़म न करो, अल्लाह तुम्हारे साथ है, का वादा उन्हें रूकने नहीं देता, क्योंकि मालिक ने उनके रास्ते के साथ “फी सबीलिल्लाह” की खुशख़बरी मुन्सलक़ की है। चलने वाले को उस राह पर अल्लाह मिलता है, उन तक पहुंचने के एक नहीं सभी रास्ते नज़र में आ जाते हैं (लनाहदीयन्नहुम सुबुलना) हम ज़रूर बा ज़रूर उन लोगों को अपने रास्ते दिखा देंगे।



बस, ऐ अल्लाह के मददगारों ! तन्हाई में घबराना मत और मुश्किल में उदास न होना ! कि तुम्हारे इस काफिले की निस्बत ईमामुल-मुजाहिदीन रसूलल्लाह (ﷺ) से है, आप (ﷺ) ही के नकूशे-पा हैं जिनको तुमने संगे-मील कहा है, जिन्हें तुमने कुबूल किया है। आप ही की हिदायात हैं जिन्हें तुमने काबिले-इत्तिबा जाना है। अगर ये नकूशे-पा, ये हिदायात और ये फैसले तुमने सच्चे दिल से कुबूल किए हैं तो सुन लो कि फिर तुम्हारे लिए उनकी जानिब से खुशखबरियां और तुम्हारी राह के बिल्अक्स, दुनियापरस्ती इख्तियार करने वालों के लिए वईदें (चेतावनियां) हैं :

“तबाह हो जाए दीनार का बन्दा और दिरहम का बन्दा, और चादर का बन्दा! अगर उसे दिया जाए तो खुश और न दिया जाए तो गुस्से ! तबाह हो जाए और मुंह के बल गिरे ! और अगर उसे कांटा चुभे तो (अल्लाह करे कि) न निकले। मुबारक हो उस बन्दे को जो अल्लाह की राह में अपने घोड़े की बाग थामे हुए हो, बाल बिखरे और गर्द आलूद पाँव ! अगर उसे पहरे पर लगा दिया जाए तो पहरा दे, और अगर पिछले लश्कर में छोड़ दिया जाए तो पिछले लश्कर ही में रहे। अगर इजाजत मांगे तो इजाजत न मिले और अगर सिफारिश करे तो उसकी सिफारिश न सुनी जाए।” (बुखारी, फी किताबुल जिहाद)

बस मुबारक हो काफिला-ए-नूर के शहसवारों ! कि तुम्हारा रास्ता काबिले-रश्क है, गुरबते-इस्लाम के इस दौर में तुम्हारी आंखें अहले-दुनिया की चकाचौंध से मरअूब न हो जाएं। तुम अमल की दुनिया में उस हस्ती के वारिस ठहरे जिसने दमे-रूखसत, जबकि घर का अनाज भी रहन पर लिया गया था, नौ चमकती तेज़ धार तलवारें अपने दरो-दीवार पर लटकती छोड़ी थीं, अलैहिस्सलामतुवस्सलाम ! मुबारक हो कि तुम इस दुनिया में काफिला-ए-हिजाज़ की जानशीनी के और इस जहान में सालारे-काफिला (ﷺ) की हमनशीनी के बरहक उम्मीदवार हो ! वहसुना उलाइका रफीका

(इज़्राईली प्रधानमंत्री गोल्डामेयर ने अल्लाह के रसूल (ﷺ) की हयाते-मुबारका के इस अज़ीम फ़लसफ़े को अमली तौर पर 1967 की अरब-इज़्राईल जंग में आजमाया और अरबों को एक तारीख़ी व फैसलाकुन शिकस्त से दो चार होना पड़ा। वाह रे मुसलमानों ! तुमने तो अपने नबी से ताक़त का सबक नहीं सीखा, मगर इस्लाम की सबसे बड़ी दुश्मन क्रौम, यहूद ने इसी सबक को पकड़ा और उसी ताक़त के सबक से तुम्हारी इज़तों को मलियामेट करके रख दिया। (मुतर्जिम))

ऐ साथियों ! अपने इख़लास को परखो, अपने नसीब को जांचों, तक्का को अपना इमाम बना लो (इत्तकुल्ललाह) और सच्चों के साथ हो जाओ (व कुनू मअस्सादिकीन) चाहे वह जहां कहीं भी हो। नामों की तख्तियों को मत पढ़ना कि ये आए रोज बदलती रहती हैं, कामों की फेहरिस्त को जांचना कि ये तारीख में सब्त (जम) हो जाते हैं, दुश्मन की हकीकत को समझना, दोस्तों की तलाश आसान हो जाएगी ! देखो!



सबीलिल्लाह को ठुकराना आखिरत के किसी सच्चे राही के लिए मुमकिन नहीं होता।  
जिन नतीजे पर बहुत से लोग आइंदा पहुंचेंगे, तुम इस पर आज पहुंच जाओ।

सुनो ! वक्त ने हमेशा साबित किया है कि “वही” की कामिल इत्तिबा ही हर  
दौर में कश्ती-ए-नूह होता है। इससे बाहर कितनी ही बुलन्द चोटी हो, पानी को उस तक  
पहुंचना ज़रूरी है फिर कश्ती से दूर रहने का फायदा? इस्लाम के कोहान की चोटी  
“जुरवतुसनामिह” को इख्तियार न करने से हासिल ?

देखो ! ये सबीलिल्लाह है, अल्लाह का रास्ता है। बहुत शफ़ाफ़, बहुत वाज़ेह !  
तौहीद के नामलेवा काफिले दर काफिले इस पर निकलते रहेंगे, नूर की ये शाहे-राह आबाद  
रहेगी, जूनों की खेतियां पकती रहेंगी, सरों के सौदे होते रहेंगे। सूद व ज़यां के ज़ाएचे वोह  
बनाएं, जिनके लिए दुनिया अहमतर हो, जिसका भरोसा वसाइल पर हो, लेकिन जिसने  
तफवीज़ व तवक्कुल का ज़ाएका चख रखा हो, जा “उफव्विज़ु अमरी इल्लल्लाह” “मैं  
अपना मामला अल्लाह के सुपुर्द करता हूँ” का इकरार करता हो, जिसकी नज़र “कुतिबा  
अलयकुमुल क़िताल” “तुम पर जंग फर्ज कर दी गई है” पर हो, जान व माल उसके  
रहते कब हैं कि वोह आज़ादमर्ज़ी से कोई फैसला करे!

ऐ हमारे रब! हमें तौफ़ीक़ दीजिए कि हम आपको और आपके आइदकर्दा किसी  
फरीजे को भूल न जाएं क्योंकि हम इसका तहम्मूल (बर्दाश्त) नहीं कर सकते कि आप हमें  
भूल जाएं, कि आपको भूलकर हम जाएंगे कहाँ ?

وَلَا تَكُونُوا كَالَّذِينَ نَسُوا اللَّهَ فَأَنْسَاهُمْ أَنْفُسَهُمْ أُولَٰئِكَ هُمُ

الْفَاسِقُونَ (19) لَا يَسْتَوِي أَصْحَابُ النَّارِ وَأَصْحَابُ الْجَنَّةِ

أَصْحَابُ الْجَنَّةِ هُمُ الْفَائِزُونَ (20)

“और उन लोगों जैसे न होना जिन्होंने अल्लाह को भुला दिया तो अल्लाह  
ने उन्हें ऐसा कर दिया कि वोह खुद अपने आपको भूल गए, ये बदकिरदार लोग हैं।  
जहन्नम वाले और जन्नत वाले बराबर नहीं। अहले-जन्नत तो कामयाब होने वाले हैं।”

(सूर : हश्र : 19-20)

وَ حَرِّضِ الْمُؤْمِنِينَ (84)

(व हरिज़िल मुअमिनीन) (अन्निसा-84)

और अहले-ईमान को (जिहाद पर) उभारो।



# दुश्मन के हमले की सूरत में, दिफ़ाई जिहाद वक्त का अहमतरीन फ़र्ज होता है।

यह शब्वाल 3 हिजरी का वाकिआ है। दुश्मन मदीनतुन्नबी (ﷺ) पर हमलावर होने को है। इस्लाम का मरकज़ खतरे की ज़द में है। मुसलमानों की इस बस्ती में नमाज़ रोज़े समेत हर तरह के फ़राईज़ की बजाआवरी जारी है। इस बस्ती की मस्जिद में पढ़ी जाने वाली एक नमाज़ पचास हज़ार नमाज़ों के बराबर है। लेकिन अब सब मुसलमान दिफ़ाए-दीनो-मिल्लत के लिये निकल खड़े हुए हैं क्योंकि वक्त का अहमतरीन तक्काज़ा यही करार पाया है।

ऐसे में एक आदमी ज़िरहबन्द होकर रसूलुल्लाह (ﷺ) की खिदमत में हाज़िर होता है और कहता है उक्कातिलू अव उसलिमू? मैं क़िताल करूँ या इस्लाम लाऊँ? नबी (ﷺ) की तरफ़ से जवाब मिलता है असलिम, सुम्मा क़ातिला! इस्लाम लाओ, फिर क़िताल में शामिल हो जाओ! चुनांचे वो शख्स इस्लाम लाया, फिर जंग में शरीक हुआ और शहीद हो गया। इस पर रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फरमाया, अमिला क़लीला व उज़िरा कसीरा. अमल कम किया, लेकिन अज़्र बहुत पाया। (बुखारी, किताबुल-जिहाद)

यह वही अन्सारी सहाबी अम्र बिन साबित रज़ि. हैं जिनके बारे में हज़रत अबूहुरैरह रज़ि. फरमाया करते थे कि मुझे उस आदमी का (नाम) बता सकते हो जिसने नमाज़ तक ना पढ़ी फिर भी वो जन्नत में दाखिल हो गया?

(फतहुल-बारी, जिल्द-6, सफा-25)

उहद के दिन जब दुश्मन इस्लामी सरज़मीन पर हमलावर हुआ तो उस सहाबी रज़ि. से ईमान लाने के बाद ना तो नमाज़ की अदायगी का फ़ौरी तक्काज़ा किया गया, ना रोज़े ज़कात की बात की गई बल्कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने उसे यही हुक्म दिया कि मैदाने-क़िताल में कूद पड़ो क्योंकि दीगर तमाम इबादात से बढ़कर उस मौक़े का अहमतरीन फ़र्ज यही था कि हमलावर दुश्मन के खिलाफ़ दिफ़ाअ किया जाए ताकि ईमान और अहले-ईमान को कुफ़्र की यलग़ार से बचाया जा सके, इस्लाम की बुनियादों, कलमा, लाइलाह-इल्लललाह मुहम्मदुरसूलुल्लाह, नमाज़, रोज़े और दीगर शआइर (निशानियों) की हिफ़ाज़त हो सके।

शैख़ अज़्ज़ाम की किताब अददिफ़ाउ अन आराज़िल मुस्लिमीना अहम फ़ुरूज़ि लिल आयानन बअदल ईमान, ईमान के बअद अहमतरीन फ़र्जे-ऐन हमलावर दुश्मन के खिलाफ़ दिफ़ाई जिहाद (और मक्बूज़ा मुस्लिम सरज़मीनों की बाज़याबी) जिहाद की इसी किस्म के अहकामात पर मबनी है। जिहाद की यह किस्म दिफ़ाई जिहाद कहलाती है। दिफ़ाई जिहाद फ़र्जे-ऐन यानि हर मुसलमान पर फ़र्ज होता है। जब दुश्मनाने-इस्लाम मुसलमानों की



सरज़मीनों की तरफ़ बढ़ें(या महज़ बढ़ने का इरादा करें) तो सब पर यह लाज़िम होता है कि कुफ़्र के उन नापाक हाथों को रोकने के लिये अपना पैसा और जान लगाएं।

इमाम इब्ने आबिदीन रह. ने अपने हाशिये की जिल्द 3 सफ़ा 238 पर लिखा है, और अगर दुश्मन किसी इस्लामी सरहद पर हमलावर हो तो जिहाद नमाज़ और रोज़े की तरह फ़र्जे-ऐन हो जाता है जिनको छोड़ने की गुंजाईश नहीं।

(बहवाला, देखना काफ़िला छूट ना जाए, अज़ अज़ाम शहीद रह.)

फिर अपनी इसी किताब में आगे चलकर शेख़ अज़ाम शहीद रह. लिखते हैं अगर जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाए तो वालिदैन् से इजाज़त लेना ज़रूरी नहीं रहता। बिल्कुल उसी तरह जैसे नमाज़ की अदायगी या रोज़े रखने के लिये उनकी इजाज़त ज़रूरी नहीं होती। और यह भी कि किसी उज़्र के बग़ैर जिहाद के फ़र्जे-ऐन को छोड़ने वाले और रमज़ान में बग़ैर उज़्र के रोज़ा ना रखने वाले में कोई फ़र्क़ नहीं।

इस्लाम के सुनहरी दौर की पूरी तारीख़ इस बात पर गवाह है कि जब भी कुफ़्र ने इस्लाम और मुसलमानों की तरफ़ मैली आंख से देखा, अहले-इस्लाम ने पूरी दस्तयाब कुव्वत इस्तेमाल करके उस हमले का दिफ़ाअ किया और उम्मत के बेहतरीन लोग और नादिरे-रोज़गार हस्तियां(मालदार लोग) इस्लाम के मोर्चों में पाई गईं। उहद व खन्दक और तबूक वगैरह के ग़ज़वात और बअद के अदवार की सैकड़ों जंगी मुहिमात इसकी वाज़ेह मिसालें हैं।

दिफ़ाई जिहाद की यह अहमियत मुसलमानों पर हमेशा इस क़द्र वाज़ेह थी कि कभी किसी के ज़ेहन में इसके शरई हुक्म के हवाले से इबहाम(शक) पैदा नहीं हुआ। हर मुसलमान यह जानता था कि ऐसी हालत में सबको निकालना है, बहरहाल (हल्के हों या बोझिल) निकलना है और मयस्सर वसाइल(उपलब्ध संसाधनों) के साथ कुफ़्र का मुकाबला करना और उसे पछाड़ना है। ऐसे मौक़े पर तरबियत और ईमान के दर्जों में तफ़ावुत (दूरी) की भी कोई शर्त ना थी, लिहाज़ा वो भी निकले जो बरसों सुहबते-नबवी (ﷺ) से शफ़ियाब रहे थे और वो भी जो ऐन मैदाने-जंग में भी ईमान लाए और एक नमाज़ भी ना पढ़ पाए थे। माली जिहाद की अहमियत भी वाज़ेह थी। कोई अपने घर का पूरा सामान खपाकर और कोई चन्द सैर अनाज खर्च करके उस जिहाद में शरीक होता(क्योंकि इससे ज़्यादा उनके बस में ना होता था) इसी यकसूई का नतीजा था कि इस्लाम पर हमला नामुमकिन और मुसलमानों की तज़लील बईद अज़ इमकान थी। (यानि मुसलमानों पर हमला करने के बारे में सोचना तक उनके लिये दिन में सपने देखने जैसा था।) इसके बरअक्स आज दुनिया में इस्लाम के वकार और मुसलमानों की हुरमतों का कोई पुरसाने-हाल नहीं। उसकी बुनियादी वजह यह है कि अहले-ईमान अपने इस अहमतररीन फ़र्जे-ऐन से गाफ़िल हैं। उम्मत के पेशवाओं, क़ाईदीन, मुफ़क्करीन और अहले इल्म से इस सूरते-हाल में सवाल करना है कि उसे ज़िल्लत के इस गढ़े से निकालने के लिये उन्होंने क्या किया?



तू इधर-उधर की ना बात कर, यह बता कि काफ़िला क्यों लुटा?

मुझे रहज़नों से गिला नहीं, तेरी रहबरी का सवाल है !

क्या इस गुमगश्ता फ़रीजे की तरफ़ दअवत देने की, इन्सानी माली वसाइल को इस जानिब लगवाने की नौबत अब भी नहीं आई, जबकि हदीसे-रसूल (ﷺ) के मिस्दाक़ अक़वामे-कुफ़्र एक दूसरे को मुसलमानों पर हमले की दअवत इस तरह दे रही हैं जिस तरह भूखे दस्तरख़वानों पर एक दूसरे को खाने की दअवत देते हैं। उन्होंने खिलाफ़ते-उस्मानिया के टुकड़े कर दिये, दुनिया-ए-अरब की एक-एक रियासत को अपने ताबेअ किया। थाईलैण्ड फ़िलीपाईन, अराक़ान समेत कई मुस्लिम रियासतों को हड़प किया, मावरून्नहर, तुर्किस्तान की मुस्लिम ममलिकतें अपने करोड़ों अहले-ईमान समेत इश्तराक़ियों (इस्लाम दुश्मन ताक़तों) के लिये लुकम-ए-तर बन गईं। वहां लाखों लोग पहले ही सलीबी बना दिये गए थे, बाक़ी मान्दा करोड़ों मर्दों-ज़न इश्तराकी और दहरी अक़ाईद (अल्लाह का सिरे से इन्कार, नास्तिकता) के शिकार हो गए, मशिकी तुर्किस्तान को चीनी ताग़ूत ने निगल लिया। फिर गुलामी व ज़िल्लत के उस सफ़र में अम्बिया अलैहि सलातु-वत्तसलीम की सरज़मीन फ़िलीस्तीन हमसे छीनी गई, बलक़ान के मुमालिक इश्तराकी व ईसाई सरबरियत व बर्बरियत का शिकार होते रहे। मस्जिदों की धरती बोस्निया, इज्तिमाई क़ब्रों की ज़मीन बन गई। इधर कश्मीर मुशिकीन की गुलामी में चला गया, अफ़ग़ानिस्तान की इमारते-इस्लामिया हाथ से जाती रही और काबुल के पाया-ए-तख़्त पर यूरोपियन व अमेरिकी सलीबी व उनकी सलीबेंकाबिज़ हो गईं। इस्लामी अज़मते-रफ़ता की यादगार दारूल-ख़िलाफ़ा बग़दाद, सलीबियों की चरागाह बन गया। यही नहीं बल्कि अब तो पूरे आलमे-इस्लाम में जा-बजा सलीबी फ़ौजी अड्डों का जाल बिछ चुका है और पूरी उम्मत-इस्लामिया अमलन उनके शिकन्ज-ए-क़हर में है।

इस वक्त सूरते-हाल यह है कि अमेरिका से बाहर, सबसे बड़ा अमेरिकी फ़ौजी अड्डा और कहीं नहीं, बल्कि ज़ज़ीरतुल-अरब, ज़ज़ीर-ए-मुहम्मद (ﷺ) के एक मुल्क (क़तर) में है और सलीबी फ़ौजें कअबतुल्लाह से सिर्फ़ 45 मील दूर पर अपना अड्डा बनाकर मोर्चाज़न हैं! कहां हैं दअवते-दीन के अलमबरदार और इत्तिब-ए-सुन्नत के दाई? क्या उनके सामने नबी मुहतरम (ﷺ) का यह फ़र्मान नहीं पहुंचा मैं ज़रूर बिल ज़रूर यहूदो-नसारा को ज़ज़ीर-ए-अरब से निकाल कर दम लूंगा, यहां तक कि मुसलमान के सिवा किसी को बाक़ी नहीं छोड़ंगा। (मुस्लिम, किताबुल जिहाद, बाब-इख़राजो-यहूदो-नसारा मिन ज़ज़ीरतुल अरब)

अभी तो अइमतुल-कुफ़्र से उन ज़ख़मों का हिसाब लेना भी बाक़ी था जब 1857 ईस्वी में हमारे 27000 उलमा व शुरफ़-ए-दिल्ली को चौकों और बाज़ारों में फांसियों पर लटकाया गया, जब हमारे तीन लाख कलमागो, ताजे-बरतानिया की अज़मत की बहाली की मुहिम की नज़र हुए और आज से पांच सौ साल पहले सकूते-उन्दलूस (स्पेन)



के मौक़े पर यूरोपियन सलीबियों ने जिस तरह मुसलमानों का ख़ून पानी की तरह बहाया, और लाखों लोगों को क़त्ल करके, बाक़ियों को जिस तरह बेपतिस्म (ईसाई बनाकर पाक करना) देकर ईसाईयत इख़्तियार करने पर मजबूर किया था, वो ज़ख़म तो क़यामत तक भुलाए ना जा सकेंगे। इमाम अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह. ने लिखा है कि पांच सौ साल से उन्दलूस कुफ़ार के क़ब्ज़े में है, तब से अब तक, उसे कुफ़ार के क़ब्ज़े से ना छुड़ाने का गुनाह मुसलमानों की गर्दनो पर मौजूद है।

यह तो एक उन्दलूस का मुआमला है, जबकि आज तो बिलादे-इस्लामिया के शर्को-ग़र्ब में कई उन्दलूस नज़र आते हैं। सवाल यह है कि हमारे साथ मुसलसल यह सब कुछ क्यों हो रहा है? इसलिये कि हम ईमान तो ले आए लेकिन उसकी हिफ़ाज़त के लिये न उठे, ना ही दीनो-दुनिया पर हमलावर होने वाले दुश्मन को पछाड़ने की कमाहक़ा कोशिश की और अगर हममें से कोई उठा भी तो बाक़ी मुस्लिम दुनिया ने उसे उठने वालों का मुक़ामी मसअला समझा और दूसरों से यही कहा कि अभी तुम पर (जिहाद) फ़र्जे-ऐन नहीं हुआ, जो पिट रहे हैं अभी सिर्फ़ उन्हीं पर फ़र्जे-ऐन है। (अगर सोवियत यूनियन के हमले के वक़्त यही जिहाद, जिहाद था तो अमेरिका व नाटो अफ़वाज़ के हमले के वक़्त वो ही ज़मीन, उन्ही लोगों के मुत्तालिफ़ यह जिहाद और उसकी रंगो-बू क्यों बदल गई? नतीजतन, एक-एक करके सारे बिलादे-इस्लाम कुफ़र के शिकन्जे में चले गए, शआइरे-इस्लाम मिटते रहे और यह सिलसिला आज तक जारी है। जबकि कुफ़ार मिल्लते-वाहिदा बनकर एक दूसरे के मुईनो-मददगार हैं। इशादे-बारी तआला है..

وَالَّذِينَ كَفَرُوا بِعَصُفِهِمْ أَوْلِيَاءَ بَعْضٌ إِلَّا تَفْعَلُوهُ تَكُن فِتْنَةً فِي

الْأَرْضِ وَفَسَادٌ كَبِيرٌ (73)

और जो लोग काफ़िर हैं वोह एक दूसरे के रफ़ीक़ हैं, अगर तुम यूं ना करोगे (यानि अहले-ईमान से रिफ़ाक़त नहीं निभाओगे) तो मुल्क में फ़ित्ना फैलेगा और बड़ी ख़राबी होगी। (सूरह-अनफ़ाल-73)

सच्ची बात यही है कि अगर उम्मत-मुस्लिमा ने इन जारेह (ज़ालिम) मुमालिक और अक़वाम के खिलाफ़ भरपूर अन्दाज़ में अपनी दिफ़ाई ज़िम्मेदारियां निभाई होतीं तो आज सूरते-हाल बहुत मुख़्तलिफ़ होती, और दुश्मन कब का इन इलाकों से निकल गया होता, और इस्लाम के खिलाफ़ काफ़िरो की जो जुरात आज हमें नज़र आती है वो हरगिज़ ना होती।

शरिअते-मुहम्मदी (ﷺ) को एक तरफ़ रखकर सोचने वाले रायपरस्त तो यही कहेंगे कि क्या करें हमारा उनका मुक़ाबला ही नहीं? साईन्सी तरक्की और ईजादात में कुफ़ार की बराबरी किये बग़ैर उनसे निपटना मुम्किन है? हम उनसे पूछते हैं कि क्या फारसो-रूम जैसी, अपने



वक्त की जाबिर कौमें साईन्सी तरकी और ईजादात के जोर पर मुसलमानों से मगलूब हुई थीं? हमारे लिये मिसाल हर हाल में मदीनतुन्नबी (ﷺ) की वो कच्ची बस्ती ही है जिसने कैसरो-किसरा जैसे तागूतों के दाँत खट्टे कर दिये, ना कि कुर्तबा जैसे शहर जिनके फ़ने-तअमीर के नादिर नमूने, उलूमो-फ़ूनून की करिश्मासाज़ियाँ दिफ़ाए-इस्लाम के कुछ काम न आ सकीं और यह सरज़मीनें फिर भी हमसे छीन ली गईं और आज यह बस्तियां हमारे लिये नमून-ए-इबरत के सिवा कुछ। अलगर्ज़ हमारा मसअला, वसाईल की कमी नहीं, बल्कि उन हाथों की कमी है जो मयस्सर वसाईल को इस्तेमाल में लाएं, उन ज़ेहनों की कमी है जो फ़र्जे-मुकद्दम को पहचानें, उन दिलों की कमी है जिनमें अल्लाह के सामने जवाबदेही का खौफ़ हो, उन आंखों की कमी है जिनसे निकलने वाले आँसू, महज़ आँसू ना हों, बल्कि वो बग़दादो-फ़िलिस्तीन, कश्मीरो-शीशान(चेचेन्या) और हेरातो-काबुल व कन्धार में बहने वाले खूने-मुस्लिम का मदावा भी बन सकें, जो नामूसे-मुहम्मद (ﷺ) की खातिर सिर्फ़ बातें ना बनाएं, कुछ करके भी दिखाएं !

आज हमारे पड़ौस अफ़ग़ानिस्तान में आलमी कुफ़्र की अफ़वाज़ मौजूद हैं और अमेरिकी क़ब्ज़े को मुस्तहक़म (मज़बूत व स्थाई) बनाए हुए हैं। इमारते-इस्लामिया अफ़ग़ानिस्तान पर नाटो, इंसाफ़ वग़ैरह के क़ालिब में किया जाने वाला सलीबी हमला अमेरिका व यूरोप की तरफ़ से इस्लाम पर मुसल्लतकर्दा वोह जंग का अहमतररीन मुहाज़ है। इसलिये कि इस्लाम की मुहब्बत, शरीअत की तन्फ़ीज़ और आलमे-इस्लाम के मुहाजरीन की मेज़बानी मुसलमानाने-ख़ुरासान के वो जुर्म हैं, जो आलमी कुफ़्र की हज़ीमत(व यलग़ार) का सामान बन गए। अमेरिका और बरतानिया समेत 40 के करीब मुमालिक जो नाटो और उसके इत्तिहादी हैं, अफ़ग़ानिस्तान पर अमेरिकी क़ब्ज़े में शरीक हैं। यह दरअसल एक बड़ी मुहिम का हिस्सा है। उनका हदफ़ सिर्फ़ वो जरी अफ़ग़ान क़ौम ही नहीं जिसने दस साल तक रूसी अफ़रियत(जुल्मो-ज़्यादती) का मुक़ाबला अपनी हिम्मत-ईमानी के बल पर किया और सुख़् रीछ को घर से बेघर किया, बल्कि उनकी पड़ौसी मेज़बान क़ौम भी है जिसने उनके लाखों मुहाजरीन को पनाह दी, वही क़ौम जिसने लाइलाह इल्लललाह की बुनियाद पर एक मुल्क तशकील दिया, जो एक जानिब मरिब में आलमी सलीबी इत्तिहादियों के लश्कर से, मशिक में हुनूद से, शुमाल में देहरियों से और जुनूबी बानियों में अज़ीमतर इस्राईल के मुहाफ़िजों से घिरी हुई है, जो हर मुहाज़ पर अग़यार की इस्लामदुश्मनी का नतीजा-ए-मश्क़ बनी हुई है लेकिन फिर भी समझती है कि हमारी बारी नहीं आएगी !...

इस वक्त इस्लामी इमारते-अफ़ग़ानिस्तान पर हमले और क़ब्ज़े में शरीक ज़्यादाह तअदाद तो अमेरिका, बरतानिया, जर्मनी इटली, केनेडा, और फ़्रांस की फौजों की है लेकिन ऑस्ट्रेलिया, ऑस्ट्रिया, बेल्जियम, क्रोएशिया, चेक- रिपब्लिक डेनमार्क, एस्टोनिया फ़िनलैण्ड, मकदूनिया (साबिका यूगोस्लाविया) यूनान, हंगरी, आइसलैण्ड, आयरलैण्ड, लातविया, लिथुआनिया, लक्ज़मबर्ग, हॉलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, नार्वे, पोलैण्ड, पुर्तगाल, रोमानिया, स्लोवाकिया, स्लोवेनिया, स्पेन,



स्वीडन, और स्वीटज़रलैण्ड, भी शामिल हैं। अमेरिका के बिलमुक्राबिल यूरोप को अपना हमदर्द समझने वाले सादा लोहों को इस फेहरिस्त पर एक बार जरूर गौर कर लेना चाहिए। हकीकत में मरिब अफ़ग़ानिस्तान में अपनी तहज़ीब के बका की जंग लड़ रहा है लेकिन पसपाई उसका मुक़द्दर है, इंशाअल्लाह। वल्लाहु अला कुल्ली शैईन क़दीर।

उधर, इनमें से बेशतर सलीबी अक़वाम इराक़ में भी इस्लामियाने-उम्मत के खिलाफ़ पूरी यकसूई से बरसरे-पैकार हैं। यहां उनकी कुल तअदाद तक़रीबन 26 है। मशिकी यूरोप की सलीबी अक़वाम के साथ-साथ जापान जैसा ग़ैर-असकरी (हथियारविहीन) मुल्क भी इस जंग में सलीब के मोर्चों में है, जबकि चीन बज़ाहिर मरिब मुखालिफ़ होते हुए भी हर क़रारदादे-जुल्म में आलमी कुफ़्र का शरीक होता है। सलीबी जंग का एक मशिकी मुहाज़ शीशान (चेचेन्या) में खुला हुआ है और यह दुश्मन के वो मोर्चे हैं जो सबकी निगाहों में हैं लेकिन वो यलग़ार जो तअलीम, इक्तिसाद, अबलाग़ियात (जनसम्पर्क व सूचना माध्यम), सफ़ाफ़त, अफ़कार और तअलुक्काते-आम्मा समेत दूसरे खुफ़िया मुहाज़ों पर जारी है उसका अहसास कितनों को है? और कितने उसके मुकाबले के लिये तैयार हैं?

मुश्किल की इस घड़ी में मुबारक हैं वोह लोग जो अपनों की बेअतनाई (बेरुख़ेपन व बेपरवाही) के बावजूद इस्लाम और मुस्लिम सरज़मीनों की दिफ़ाअ कर रहे हैं, मलामत करने वालों की मलामत से बेपरवाह अपने सरो की फ़सीलें कटाए जा रहे हैं, उम्मत को ज़िल्लत के गढ़ से निकालने के लिये खुद अपनी तौहीन बर्दाश्त कर रहे हैं। दुनियावी ज़िन्दगी के इन झमेलों, क़ब्र की तंगो-तारीक कोठरियों में, और क़यामत की हौलनाकियों में अल्लाह की मअय्यत (मदद) उनके साथ है, फ़रिश्ते उनके दोस्त हैं, इंशाअल्लाह। और यह सब मशक्कतें दुनिया व आख़िरत में उनके ख़ूब काम आएंगी क्योंकि यही तो वोह लोग हैं जो सबसे बढ़कर अपने मालिक की रहमत के उम्मीदवार हैं।

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَالَّذِينَ هَاجَرُوا وَجَاهَدُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ أُولَٰئِكَ يَرْجُونَ

رَحْمَتَ اللَّهِ وَاللَّهُ غَفُورٌ رَّحِيمٌ (218)

बेशक जो लोग ईमान लाए और जिन्होंने हिजरत की और अल्लाह की राह में लड़े, वोह अल्लाह की रहमत के उम्मीदवार हैं और अल्लाह बख़शने वाले, मेहरबान हैं। (अलबक़रह-218)

अल्लाह अज़्जो-वजल की रहमत के तलबगार यह लोग दुनिया में दअवते-इस्लामी की सरबुलन्दी के ख़्वाब देखने वाले हैं। एक ऐसा ख़्वाब जिसकी तअबीर पर हमारा यक़ीन इससे कहीं ज़्यादा है जितना यक़ीन हमें कल के सूरज के तुलूअ होने पर है! सच यह है कि वोह उम्मत जिसका मक़सदो-वुजूद बतौरे-उम्मत है ही यह कि इस दुनिया से मुनकर को ख़त्म करे, नेकी का चलन आम करे वोह अपने असासी फ़रीजे से कभी सुबुकदोश नहीं हो सकती। उसके सभी वाबस्तग़ान को घूम-फिरकर उसी लायह-



ए-अमल की तरफ आना है जो अज़ल से उसके लिये मुकरर है।

كُنْتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ  
الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ وَلَوْ آمَنَ أَهْلُ الْكِتَابِ لَكَانَ خَيْرًا لَهُمْ  
مِّنْهُمْ الْمُؤْمِنُونَ وَأَكْثَرُهُمُ الْفَاسِقُونَ (110)

तुम आलम में भेजी गई सब उम्मतों से बेहतर हो। अच्छे कामों का हुक्म करते हो और बुरे कामों से मना करते हो और अल्लाह पर ईमान लाते हो।

(आले-इमरान, 110)

## जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की दो अक्साम

कुफ़्फ़ार के खिलाफ जिहाद की दो अक्साम हैं :

1. इक्दामी जिहाद (जिहादुल्लतलब)
2. दिफ़ाई जिहाद (जिहादुल्दिफ़ाअ)

1. इक्दामी जिहाद (जिहादुल्लतलब) का मतलब है :

“यानी खुद जंग की इब्तदा करते हुए कुफ़्फ़ार के इलाक़े में घुसकर उन पर हमला करना, जबकि वोह मुसलमानों के खिलाफ़ क़िताल के लिए तैयारी भी न कर रहे हों।”

ऐसे हालत में जिहाद, फ़र्जे-किफ़ाया होता है, जिसकी अदाएगी का कम से कम दर्जा ये है कि :

1. सरहदों पर अहले-ईमान की इतनी तादाद हर वक़्त मौजूद रहे जो सरज़मीने-इस्लाम की दिफ़ाअ और अल्लाह के दुश्मनों पर दहशत बढ़ाने के लिए काफी हों।

2. साल में कम से कम एक मर्तबा मुसलमान फौज को कुफ़्फ़ार के खिलाफ़ लड़ने के लिए ज़रूर भेजा जाए।

लिहाजा मुसलमानों के इमाम की ज़िम्मेदारी बनती है कि वोह साल में एक या दो मर्तबा दारुलहरब की सिम्त लश्कर ख़ाना करे और रिआया का फ़र्ज बनता है कि वोह इस सिलसिले में इमाम के साथ तआवुन करे। लेकिन अगर इमाम किसी लश्कर को नहीं भेजता तो गुनाह का बोझा उसी पर होगा।

फ़ुक़हा (साल में एक मर्तबा लश्कर भेजने के) इस मसले को जिज़्ये के मसले पर क़यास करते हैं। उलमाए-उसूल फ़र्माते हैं :

“जिहाद कुव्वत व ग़लबे के ज़रिए दावत फैलाने का नाम है। पस जिहाद



को इस्तिताअत भर कायम करना फर्ज है यहां तक कि कोई ऐसा शख्स बाकी न रहे जो मुसलमान न हो या फिर मुसलमानों से मसालिहत (समझौता) न कर चुका हो।" (हाशिया अशशिरवानी, व इब्नुल कासिम, अला तुहफतुल मुहताज अलल मिनहाज)

## दिफाई जिहाद (जिहादुद्दिफाअ) और उसका शरई हुक्म

दिफाई जिहाद (जिहादुद्दिफाअ) से मुराद है :

“यानी कुफ़ार को मुसलमानों के इलाकों से बाहर निकालने के लिए जिहाद। दिफाई जिहाद फर्जे-ऐन, बल्कि अहमतररीन फर्जे-ऐन है। चार सूरतें ऐसी हैं कि जिनमें दिफाई जिहाद तअय्युन(निर्धारण) के साथ हर एक पर फर्ज हो जाता है :

1. जब कुफ़ार मुसलमानों के किसी भी इलाके में घुस आए।
2. जब कुफ़र व इस्लाम के लश्करो का आमना सामना हो और दोनों तरफ की सफें एक-दूसरे से टकरा जाए।
3. जब इमाम कुछ अफराद या किसी क़ौम से जिहाद के लिए निकलने का मुतालबा करे, तो उन सब पर जिहाद फर्ज हो जाता है, कि निकलें।
4. जब कुफ़ार कुछ मुसलमानों को कैद कर लें।

## जब कुफ़ार मुसलमानों के किसी इलाके में घुस आए

सलफ व ख़लफ, चारों फ़िक़ही मज़ाहिब के उलमा, मुहद्दीसीन और मुफ़स्सिरीन, तारीख़े-इस्लामी के तमाम अदवार(दौरों) में इस बात पर ग़ैर-मशरूत (पहले से मुतय्यन) तौर पर मुत्तफ़िक़ रहे हैं कि अगर कुफ़ार मुसलमानों के किसी भी इलाके में घुस आए तो वहां बसने वालों और उनके कुर्बो-जवार(आस-पास)में रहने वालों पर जिहाद फर्जे-ऐन हो जाता है। ऐसे हालात में औलाद वालदेन की, बीवी, शौहर की और मकरूज़, कर्ज़ख़्वाह की इजाज़त के बग़ैर जिहाद के लिये निकलेंगे।

अगर दुश्मन को पछाड़ने के लिए ये सब लोग नाकाफी साबित हों या ये लोग कोताही करें, या सुस्ती से काम लें, या बिलाउज़्र बैठे रहें तो ये फर्जियते-ऐन दायरे की शक्ल में अगले इलाकों तक फैलती जाएगी, पहले सबसे करीब वालों को अपनी लपेट में लेगी, फिर उनसे करीब वालों को। फिर अगर वोह लोग भी नाकाफी हों या कोताही करें (और मज़ीद मुजाहिदीन की ज़रूरत बरकरार रहे) तो फर्जियत का ये दायरा बतदरीज आगे फैलता जाएगा यहां तक कि (ज़रूरत पड़ने पर) पूरी ज़मीन के मुसलमानों को अपनी लपेट में ले लेगा शैख़ुल-इस्लाम इब्ने-तैमिया रह. फर्माते हैं :

“और जहां तक बात है “दिफाई क़िताल” की तो हुर्मतों और दीन पर हमलावर दुश्मन को पछाड़ने के लिए ये क़िताल की अहमतररीन क़िस्म है और इसीलिए इसके फर्ज



होने पर उम्मत का इज्माअ है। ईमान लाने के बाद सबसे अहमतररीन फरीजा दीन व दुनिया को बर्बाद करने वाले हमलावर दुश्मन को पछाड़ना है। इस फर्जियत के लिए कोई शराइत नहीं (मसलन ज़ादे-राह और सवारी मौजूद होने की शर्त भी साक़ित हो जाती है) बल्कि जिस तरह भी मुमकिन हो दुश्मन को पछाड़ा जाएगा। ये बात उलमा ने सराहतन कही है, ख़्वाह वोह हमारे मज़हबे-फ़िक़ही के उलमा हों, या दीगर फ़िक़ही मज़ाहिब के।

(फ़तावा अल-कुबरा, 4/520)

इमाम इब्ने-तैमिया रह. के दौर में एक काज़ी ने ये कहा कि :

“जब किसी इलाक़े वालों पर जिहाद फर्जे-ऐन हो जाए तो जो लोग उस इलाक़े से क़सर की मुसाफ़त पर रहते हैं उन पर, हज की तरह, जिहाद भी सिर्फ़ उसी सूरत पर फर्ज होगा जब उनके पास ज़ादे-राह और सवारी मौजूद हो।”

काज़ी ने जिहाद को हज पर क़यास करते हुए जिस राए का इज़हार किया है वह इससे पहले किसी आलिम से मन्कूल नहीं। ये निहायत कमज़ोर राए है क्योंकि जिहाद इसलिए फर्ज किया गया है ताकि दुश्मन के शर को दूर किया जा सके, **लिहाज़ा जिहाद की फर्जियत हिजरत से भी बढ़कर है।**

अब जबकि हिजरत के लिए सवारी की शर्त नहीं तो जिहाद के लिए ये शर्त बदर्जा-ए-अव्वल साक़ित होगी।

हज़रत उबादा बिन सामित रजि. से एक सहीह हदीस में मर्वी है कि रसूलल्लाह (ﷺ) ने फर्माया :

“बन्दा-ए-मोमिन पर हुक्म सुनना और इताअत करना वाजिब है, चाहे उसे तंगी हो या आसानी, खुशी हो या नागवारी और चाहे दूसरों को उस पर तर्जीह दी जाए।”

चुनांचे ये हदीस इताअते-हुक्म को लाज़िम करार देती है और तंगी व आसानी, हर हाल में जिहाद के लिए निकलने को फर्ज ठहराती है। ये फर्माने-नबवी (ﷺ) इस मामले में नस(बुनियाद) की हैसियत रखता है और ये इस बात की वाज़ेह दलील भी है कि हज के बर-खिलाफ़, जिहाद तंगी के आलम में भी फर्ज रहता है। तंगी या आसानी, हर हाल में निकलने का ये हुक्म इक्दामी क़िताल के हवाले से है और अगर मामला-ए-दिफ़ाअ क़िताल का हो तो वोह हुर्मतों और दीन पर हमलावर दुश्मन को पछाड़ने की खातिर क़िताल की अहमतररीन क़िस्म है और इसके फर्ज होने पर पूरी उम्मत का इज्माअ है। ईमान लाने के बाद सबसे अहम फरीजा यही है कि दीन व दुनिया को बर्बाद करने वाले हमलावर दुश्मन को पछाड़ा जाए, लिहाज़ा वहां ज़ादे-राह और सवारी की शर्त लगाने का सवाल ही नहीं पैदा होता।” (मिन क़िताबिल-इख़्तियारात, अल इलमिया लि इब्ने तैमिया,

मुलहक बिल फ़तावा अलकुबरा, 4/608)



# मसल-ए-ज़ेरे-बहस में, चारों इमामों की राय

आइये, अब इस मसले से मुताअलिक चारों मज़ाहिबे-फिक़ही की आराए (रायों) पर एक नज़र डालें।

(अ) अलफ-हनफ़िया की राए —:

इब्ने-आबिदीन रह. फर्माते हैं :

“अगर दुश्मन किसी भी इस्लामी सरहद पर हमलावर हो जाए तो (वहां बसनेवालों पर) जिहाद फर्जे-ऐन हो जाता है। इसी तरह उनके कुर्बों-जवार में बसनेवालों पर भी जिहाद फर्जे-ऐन हो जाता है। अल्बत्ता जो लोग उनसे पीछे, दुश्मन से फासले पर बसते हों, तो जब तक उनकी ज़रूरत न पड़े उन पर जिहाद फर्जे-किफाया ही रहता है। लेकिन अगर किसी भी वजह से उनकी ज़रूरत पड़ जाए, मसलन : जिस इलाक़े पर हमला हुआ है उसके कुर्बों-जवार में रहने वाले लोग दुश्मन के खिलाफ मज़ाहिमत (प्रतिरोध) करने में बेबस हो जाएं, या बेबस तो न हों लेकिन अपनी सुस्ती की वजह से जिहाद न करें तो ऐसी हालात में उनके इर्द-गिर्द बसनेवालों पर भी जिहाद, नमाज़ और रोज़े की तरह फर्जे-ऐन हो जाता है और उसे तर्क करने की कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं रहती। फिर फर्जियत का ये दायरा उसके बाद और फिर उसके बाद वालों तक हस्बे-ज़रूरत फैलता जाता है यहां तक कि इसी तदरीज से बढ़ते हुए एक वक्त मशरिक़ व मगरिब में बसने वाले हर मुसलमान पर जिहाद फर्ज हो जाता है।” (हाशिया इब्ने-आबिदीन : 3/238)

इमाम कासानी रह. (बदाइउस्सनाअ 7/72) इब्ने-नजीम रह. (अल बहरूल राइक़, लि- इब्ने-नजीम 191/5) और इब्ने-हमाम रह. (फ़तहुल क़दीर, इब्ने-हुमाम 191/5) ने भी ऐसे ही फ़तावे दिए हैं।

(ब) मालकिया की राए —:

“हाशिया-अहुसूकी” में दर्ज है कि :

“दुश्मन के अचानक हमले की सूरत में जिहाद फर्जे-ऐन हो जाता है, दसूकी रह. फर्माते हैं : दुश्मन के अचानक हमले की सूरत में दिफाअ करना हर एक की जिम्मेदारी बन जाती है, ख़्वाह कोई औरत, गुलाम या बच्चा ही क्यों न हो और चाहे शौहर, आक्रा या क़र्जख़्वाह उन्हें मना करें, ये फिर भी निकलेंगे।” (हाशिया-अहुसूकी-2/174)

(स) शाफ़िया की राए —:

अलरम्ली रह. “नहायतुलमुहताज” में लिखते हैं :

“अगर कुफ़्फ़ार हमारे इलाक़े में घुस आएंगे और हमारे और कुफ़्फ़ार के दर्मियान क़सर की मुसाफ़त रह जाए तो इस मुसाफ़त के अन्दर बसने वाले सब मुसलमानों के लिए दिफाअ करना लाज़िम होगा, हत्ताकि वोह लोग जिन पर आम तौर पर जिहाद फर्ज नहीं



होता, यानी फकीर, कम उम्र बच्चा, गुलाम, मकरूज और औरत, अब उन पर भी लाज़िम होगा कि वह दिफाअ करें।” (नहायतुल मुहताज-8/58)

(द) हम्बला की राए —:

इब्ने-कुदामा रह. अलमुगनी में रक़म तराज़ है :

“तीन सूरतों में जिहाद फर्ज़-ऐन हो जाता है :

1. जब कुफ़ार व इस्लाम के लश्क़रों का आमना-सामना हो और दोनों तरफ की सफ़े एक-दूसरे से टकरा जाएं (तो वहां मौजूद हर मुसलमान पर जिहाद फर्ज़-ऐन हो जाता है।)

2. जब कुफ़ार किसी इलाक़े पर हमलावर हो तो उसके (रहनेवालों) पर फर्ज़-ऐन हो जाता है कि वोह उनके खिलाफ़ क़िताल करें और उन्हें बाहर निकालें।

3. जब इमाम किसी (फ़र्द या अफ़राद) को जिहाद के लिए पुकारें तो उन पर फर्ज़ हो जाता है कि वोह निकल खड़े हों।

इमाम इब्ने-तैमिया रह. फर्माते हैं :

“जब दुश्मन इस्लामी सरज़मीन में घुस आए तो बिलाशुब्हा उसे निकाल बाहर करना क़रीबी आबादियों पर, और अगर वोह न निकाल सकें तो उसके बाद वाली क़रीबी आबादियों पर फर्ज़ हो जाता है, क्योंकि मुसलमानों के तमाम इलाक़ों की हैसियत दरअसल एक ही मुल्क की सी है। ऐसी हालत में वालिद और क़र्ज़ख़्वाहों की इजाज़त के बग़ैर निकलना फर्ज़ हो जाता है। इस बारे में इमाम अहमद रह. की राए बिल्कुल वाज़ेह है।

(अल फतावा अल कुबरा-4/608)

मज़कूरा बाला सूरते-हाल में, यानी जब दुश्मन मुसलमानों के किसी इलाक़े पर हमला कर दे, हर एक पर जिहाद के लिए निकलना फर्ज़ हो जाता है। इस हुक्म को शरिअत की इस्तिलाह में “नफ़ीरे-आम” कहा जाता है।



## -नफ़ीरे-आम (सबके निकलने) के दलाईल-

1. निकलो, चाहे हल्के हो या बोझल

अल्लाह अज़्जु वजल का फर्मान है,

انْفِرُوا خِفَافًا وَثِقَالًا وَجَاهِدُوا بِأَمْوَالِكُمْ وَأَنْفُسِكُمْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ ذَلِكَُمْ  
خَيْرٌ لَّكُمْ إِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُونَ (41)

“निकलो, ख्वाह हल्के हो या बोझल और जिहाद करो अल्लाह के रास्ते में अपने मालों और अपनी जानों से, अगर तुम जानते हो तो यही तुम्हारे लिए बेहतर है।” (सूर : तौबा : 41)

इससे पिछली आयते-मुबारका ये बात वाज़ेह करती है कि जो लोग नफ़ीरे-आम के हुक्म की पैरवी नहीं करते और जिहाद के लिए नहीं निकलते, वो अज़ाबे-इलाही के मुस्तहिक हो जाते हैं और अल्लाह तआला सज़ा के तौर पर उनको हटाकर उनकी जगह दूसरे लोगों को ले आता है और ये बात अहले-इल्म से पोशीदा नहीं कि अज़ाब की वईद किसी हराम के इर्तकाब(कर गुज़रने) या किसी फर्ज के तर्क करने ही पर सुनाई जाती है।

إِلَّا تَنْفِرُوا يُعَذِّبْكُمْ عَذَابًا أَلِيمًا وَيَسْتَبْدِلْ قَوْمًا غَيْرَكُمْ وَلَا تَضُرُّهُ شَيْئًا  
وَاللَّهُ عَلَى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ (39)

“अगर तुम न निकले तो अल्लाह तुम्हें दर्दनाक अज़ाब देगा और तुम्हारी जगह कुछ और लोगों को ले आएगा और तुम उसे कुछ नुक़सान न पहुंचा सकोगे और यक़ीनन अल्लाह हर शै पर क़ादिर है।” (सूर : तौबा : 39)

इब्ने-कसीर रह. इस आयत की तशरीह में लिखते हैं :

“अल्लाह तआला ने ग़जवा-ए-तबूक के मौक़े पर मुसलमानों को रसूलल्लाह (ﷺ) के साथ नफ़ीरे-आम (यानी तमाम मुसलमानों को निकलने) का हुक्म दिया, ताकि अल्लाह के दुश्मनों, अहले-किताब रूमी काफ़िरों के खिलाफ जंग की जाए। इमाम बुख़ारी ने इस आयते-मुबारक को अपनी किताब में इस उन्वान के तहत ज़िक्र किया है :

“सब मुसलमानों के निकलने का वाज़िब होना और जिहाद और उसकी नीयत से मुताअलिक वाज़िब उमूर।” वाक़िया यह है कि जब मुसलमानों के कानों तक ये बात पहुंची कि ईसाई लश्कर मदीना पर हमले के लिए ज़ज़िरा-ए-अरब की सरहदों



पर जमा हो रहा है तो अल्लाह तआला ने नफ़ीरे-आम का हुक्म दे दिया। अगर महज़ इस वजह से तमाम मुसलमानों को जिहाद के लिए निकलने का हुक्म दे दिया गया कि दुश्मन सरहदों पर जमा हो रहा है, तो उस वक्त क्या हुक्म होगा जब कुफ़ार अमलन मुसलमानों के इलाके में घुस आएँ ? क्या ऐसे हालात में नफ़ीरे-आम बदर्जा-ए-अव्वल फर्ज नहीं होगा ?

हज़रत अबूतल्हा रज़ि. ने अल्लाह तआला के फर्मान (निकलो, ख़्वाह हल्के हो या बोझिल) की तशरीह करते हुए फर्माया :

“अधेड़ उम्र हो या जवान (सब को निकलना होगा, क्योंकि) अल्लाह ने किसी का उज़्र क़बूल नहीं किया।” (मुख्तसर, इब्ने-कसीर 144/2)

इमाम हसन बसरी रह. इसी फर्माने-इलाही की तशरीह में फर्माते हैं :

“फ़िल उसरि वल युसरा।”

“तंगी व आसानी, दोनों हालतों में निकलना फर्ज है।”

इमाम इब्ने-तैमिया रह. “मजमुआ अल फ़तावा” में फर्माते हैं।

“बस अगर दुश्मन मुसलमानों पर हमले का इरादा करे तो उसे दफा करना सब पर फर्ज होगा, उन पर भी जो हमले का हदफ हों और उन पर भी जो हदफ न हों और जैसा कि अल्लाह तआला का फर्मान है

وَإِنْ اسْتَنْصَرُواكُمْ فِي الدِّينِ فَعَلَيْكُمْ النِّصْرُ (72)

“और अगर वो दीन के मामले में तुमसे मदद मांगे तो उनकी मदद करना तुम पर फर्ज है।” (अल अनफ़ाल-72)

जैसा कि नबी (ﷺ) ने भी (कई अहादीसे-मुबारका में) मुसलमानों की मदद करने का हुक्म दिया है। ये हुक्म सबके लिए है, ख़्वाह कोई बाक़ायदा तनख़्वाह-दार फौजी हो या आम मुसलमान, हर एक पर हसबे-इस्तिताअत जान व माल से दिफाई जिहाद करना फर्ज है, चाहे क़िल्लत हो या कसरत, सवारी मयस्सर हो या पैदल ही निकलना पड़े। बिल्कुल इसी तरह जैसे ग़जवाए-ख़न्दक के मौक़े पर जब दुश्मन ने मुसलमानों का रूख़ किया तो अल्लाह तआला ने किसी को भी जिहाद से पीछे रहने की इजाज़त नहीं दी।” (मजमुआ अल फ़तावा 358/28)

इमाम जौहरी रह. फर्माते हैं :

“हज़रत सईद बिन मुसय्यब रह. जंग के लिए निकले, हालांकि उनकी एक आंख पहले ही जंग की नज़र हो चुकी थी।” आपसे कहा गया : आप माअज़ूर हैं, आप आराम कीजिए, निकलने को और बहुत से लोग मौजूद हैं। फर्माया : नहीं, अल्लाह ने ख़फ़ीफ़ व सकील, हर शख्स को निकलने को कहा है। अगर मैं जंग



नहीं कर सकता तो क्या हुआ, मुजाहिदीन की तादाद में इजाफे का सबब ही बन जाऊंगा और उनके सामान की हिफाज़त करूंगा।”  
(अल-जामेअ, लि-अहकामुल-कुर्आन)

## 2. तुम सब उन सबसे लड़ो।

अल्लाह अज़्जवजल का फर्मान है :

وَقَاتِلُوا الْمُشْرِكِينَ كَافَّةً كَمَا يُقَاتِلُونَكُمْ كَافَّةً وَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ مَعَ الْمُتَّقِينَ (36)

“और इन मुश्रिकीन से सब मिलकर लड़ो जैसा कि वोह सब मिलकर तुम से लड़ते हैं और ये जान रखो कि अल्लाह तआला मुत्तकियों का साथी है।”  
(सूर : तौबा 36)

इब्ने अल-अरबी रह. फरमाते हैं, “(इस आयत में वारिद होने वाले लफज़) “काफ़तन” से मुराद : हर जानिब से और हर हालत में उन्हें घेरते हुए (उनसे जंग करो)।” (अल जामेअ लि अहकामुल कुर्आन)

## 3. फितने के खात्मे तक जिहाद फर्ज है।

अल्लाह अज़्जवजल का फर्मान है :

وَقَاتِلُوهُمْ حَتَّى لَا تَكُونَ فِتْنَةٌ وَيَكُونَ الدِّينُ كُلُّهُ لِلَّهِ (39)

“और उनसे क़िताल करते रहो यहां तक की फितना बाक़ी न रहे और दीन पूरे का पूरा अल्लाह ही का हो जाए।” (सूर : अन्फाल : 39)

यहां फ़ितने से मुराद शिर्क है, जैसाकि हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रजि. और अस्सदी रह. वगैरह ने वाज़ेह तौर पर लिखा है:

“बिलाशुब्हा जब कुप्फार हमलावर हों और हमारे इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लें तो उम्मत का दीन दांव पर लग जाता है और अक़ीदा खतरे में पड़ जाता है। बस ऐसे हालात में दीन, नफ़्स, इज़्जत और माल को बचाने के लिए क़िताल फर्ज हो जाता है।”

## 4. जब भी जिहाद के लिए निकलने का तक्राज़ा हो।

रसूले-अकरम (ﷺ) का फर्मान है :

“फतहे(मक्का) के बाद (मक्के से मदीना) हिजरत बाक़ी नहीं रही, लेकिन जिहाद और इसकी नीयत अब भी बाक़ी है और जब तुम से नफ़ीर (यानी जिहाद के लिए निकलने) का तक्राज़ा किया जाए तो निकल पड़ो।”

(बुखारी क़िताबुल-जिहाद)



लिहाजा उम्मत से जब भी नफ़ीरे-आम (यानी सबके निकलने) का मुतालबा हो तो सब मुसलमानों पर फर्ज हो जाता है कि वह जिहाद के लिए निकलें, और बिलाशुब्हा कुफ़ार के हमले की सूरत में शरीअत मुसलमानों से यही मुतालबा करती है।

नफ़ीरे-आम (सबका निकलना) दो सूरतों में फर्ज हो जाता है -

1. जब इमाम जिहाद के लिए पुकारे।
2. जब मुसलमानों को मदद की ज़रूरत पड़ जाए (ख़्वाह कोई पुकारे या न पुकारे।)

जैसा कि इब्ने-हजर रह. इस हदीस की तशरीह में इमाम कुर्तबी रह. के हवाले से लिखते हैं :

“हर वोह शख्स जिसके इल्म में ये बात आ जाए कि मुसलमान अपने दुश्मन के मुकाबले में कमज़ोर है और वोह ये भी जानता हो कि उसके लिए उन तक पहुंचना और उनकी मदद करना मुमकिन है, तो उस पर लाज़िम होगा कि वोह उनका साथ देने के लिए (चाहे कोई उसे पुकारे या न पुकारे) निकल पड़े।” (फ़तहुल-बारी, 30/6)

इसी मसले की वज़ाहत करते हुए शाह वलीउल्लाह मुहद्दिस देहलवी रह. “मुअत्ता इमाम मालिक रह.” की शरह में लिखते हैं : “ज़रूरी नहीं की कोई ख़ास शख्स मुसलमानों को ये कहकर पुकारे कि “आओ जिहाद करो।” मक्सूद ये है कि ऐसी हालत पैदा हो जाए जो नफ़ीरे-आम का तक्राज़ा कर रही हो। बस जब काफ़िरों ने इस्लामी मुल्कों (पर हमले) का क़सद(इरादा) किया और मुसलमानों और काफ़िरों में लड़ाई शुरू हो गई तो जिहाद फर्ज हो गया और जब दुश्मनों की ताक़त उन मुमालिक के मुसलमानों से ज्यादा क़वी हुई और मुसलमानों की शिकस्त का ख़ौफ़ हुआ, तो यके बाद दीगरे (एक के बाद दूसरे) तमाम मुसलमानाने-आलम पर जिहाद फर्ज हो गया, ख़्वाह कोई पुकारे या न पुकारे। यही हाल तमाम फराइज़ का है। नमाज़ का जब वक़्त आ जाए तो ख़्वाह मुअज़्जिन की सदा-ए-हय्याअलस्सलाह सुनाई दे या न दे, वक़्त का आना वुजूब के लिए काफ़ी होता है। (मुतर्जिम)

## 5. ज़रूरियाते-ख़म्सा की हिफाज़त फर्ज है।

अल्लाह की तरफ से नाज़िल होने वाला हर दीन “पांच बुनियादी ज़रूरियात” की हिफाज़त के लिए आया है, जिन्हें शरीअत की इस्तलाह में “ज़रूरियाते-ख़म्सा” कहा जाता है, यानी :

- (1) दीन      (2) जान      (3) इज़्जत      (4) अक़्ल      (5) माल

चुनांचे इन ज़रूरियाते-ख़म्सा की हर मुमकिन तरीके से हिफाज़त करना फर्ज है। इस्लाम ने “अदुब्बे-साइल” (हमलावर दुश्मन) के मुकाबले का हुक्म भी इसीलिए दिया है ताकि उन ज़रूरियात की हिफाज़त की जा सके।

(जामेअ लि अहकामुल-कुर्आन, 150/8)

(ज़रूरियाते-ख़म्सा की ये तर्तीब हमेशा पेशे-नज़र रहनी चाहिए। इस तर्तीब के



मुताबिक दीन की हिफाजत जान, इज्जत, अक़ल और माल, सबकी हिफाजत पर मुक़द्दम (श्रेष्ठ) है। इसीलिए अगर कुफ़र हमलावर हों और दीन दांव पर लग जाए तो शरिअत यही हुक्म देती है कि दिफाएँ—दीन की खातिर अपना सब कुछ हत्ताकि अपनी जान तक कुर्बान कर दी जाए, और ये तजज़िया (विश्लेषण) करने में वक्त न जाया किया जाए कि क़िताल करने से फ़ायदा ज़्यादा होगा या नुक़सान, क्योंकि इस्लाम की निगाह में दीन के नुक़सान से बड़ा और कोई नुक़सान नहीं। इसी तर्ज़िब को पेशे—नज़र रखा जाए तो मुसन्निफ़ कि ये बात समझना भी आसान हो जाती है कि “अदुव्वे—साइल” के खिलाफ़ दिफाई जिहाद महज़ फ़र्जे—ऐन ही नहीं, अहमतीरीन फ़र्जे—ऐन है। (मुतर्जिम)

“अदुव्वे—साइल से मुराद वोह दुश्मन है जो किसी दूसरे की जान, माल या इज्जत के दरपे हुआ और उसे बज़ोर मज़्लूब करने के लिए उस पर हमला करे।”

### (अ) इज्जत पर हमलावर दुश्मन के खिलाफ़ दिफाअ !

फ़ुक़हा इस बात पर मुत्तफ़िक़ हैं कि इज्जत पर हमलावर दुश्मन को पछाड़ना फ़र्ज है, चाहे वोह हमलावर खुद भी मुसलमान हो। इज्जत का दिफाअ बहरहाल किया जाएगा, ख़्वाह ऐसा करने में हमलावर क़त्ल ही क्यों न हो जाए। इसीलिए फ़ुक़हा ने ये बात सराहत (साफ़—साफ़) से लिखी है कि अगर किसी मुसलमान औरत को अपनी इज्जत पामाल होने का ख़ौफ़ हो तो इसलिए जाइज़ नहीं कि वोह अपने आपको गिरफ्तारी के लिए दुश्मन के हवाले कर दे, (यानी उस पर मज़ाहिमत (प्रतिरोध) फ़र्ज है) चाहे उसे (नतीजतन) क़त्ल ही क्यों न कर दिया जाए।

### (ब) माल व जान पर हमलावर दुश्मन के खिलाफ़ दिफाअ !

जम्हूर उलमा और मालिकी व शाफ़ई मज़हब की राजेह राए के मुताबिक़ माल व जान पर हमलावर दुश्मन को पछाड़ना फ़र्ज है, चाहे वोह हमलावर मुसलमान हो और चाहे मुक़ाबले के दौरान वोह मारा ही क्यों न जाए। सहीह हदीस में रसूलल्लाह (ﷺ) का ये फ़र्मान मन्कूल है :

“जो कोई अपने माल की दिफाअ करते हुए मारा जाए वोह शहीद है और जो कोई अपनी जान की दिफाअ करते हुए मारा जाए वोह शहीद है और जो कोई अपने दीन की दिफाअ करते हुए मारा जाए वोह शहीद है और जो कोई अपने ख़ानदान की दिफाअ करते हुए मारा जाए वोह शहीद है।” (अहमद, अबूदाऊद, तिर्मिज़ी, नसाई सहीहुल-जामेअ—अस्सगीर लिल—अलबानी 6321)

इमाम अबूबक्र जसास रह. ये हदीस ज़िक़र करने के बाद फ़र्माते हैं :

“अगर एक शख्स किसी दूसरे शख्स को नाहक़ क़त्ल करने के लिए उस पर तलवार उठाए तो मुसलमानों पर लाज़िम है कि वोह उसे क़त्ल कर डालें। हमारे इल्म में नहीं कि इस मसले में कोई इख़िलाफ़ पाया जाता हो।”

(अलअहकामुल—कुर्आन, लिल जसास 2402/1)



ऐसी सूरते-हाल में अगर हमलावर (साइल) मारा जाए तो चाहे वोह मुसलमान ही क्यों न हो, वोह जहन्नम में जाएगा। लेकिन इसके बरअक्स, अगर अपना दिफाअ करनेवाला (आदिल) मारा जाए तो वोह शहादत का रूत्बा पाएगा। अगर मुसलमान हमलावर के बारे में शरिअत का हुक्म ये है तो उन काफ़िरों के बारे में शरिअत का हुक्म क्या होगा जो मुसलमानों की सरज़मीन पर हमलावर हों और मुसलमानों का दीन, इज्जत, जान और माल सब ही ख़तरे में पड़ जाएं ? क्या ऐसी हालत में भी मुसलमानों पर काफ़िर अदुब्बे-साइल और हमलावर काफ़िर मुल्क को पछाड़ना फ़र्ज नहीं होगा ?

## 6. कुफ़ार मुसलमान कैदियों को ढाल बना लें, तब भी लड़ा जाएगा।

अगर कुफ़ार मुसलमान कैदियों को अपनी फौज़ के सामने ढाल के तौर पर इस्तेमाल करते हुए मुसलमानों के इलाक़ों पर क़ब्ज़े के लिए पेश-क़दमी करें तो भी उनसे जंग करना फ़र्ज है, ख़्वाह नतीजतन मुसलमान कैदी मारे ही क्यों न जाएं। (इस मसले को शरिअत की इस्तलाह में “मसलाए-ततुरस” कहा जाता है।) इमाम इब्ने-तैमिया रह. “मजमूअ-अल्फ़तावा” में फ़र्माते हैं :

“हत्ताकि अगर कुफ़ार के दर्मियान दुनिया के बेहतरीन, नेक सालेह लोग मौजूद हों, मगर उनके क़त्ल हुए बग़ैर कुफ़ार से क़िताल करना नामुमकिन हो तो उन्हें भी (कुफ़ार के साथ ही) क़त्ल कर दिया जाएगा। क्योंकि चारों इमाम इस बात पर मुत्तफ़िक़ हैं कि अगर कुफ़ार मुसलमान कैदियों को बतौर-ढाल इस्तेमाल करें और कुफ़ार पर हमला न करने की सूरत में बाक़ी मुसलमानों को नुक़सान पहुंचने का ख़तरा हो, तो उन मुसलमान कैदियों पर अस्लाह बरसाना जाइज़ होगा, अगरचे नीयत कुफ़ार को मारने की, की जाएगी। बाज़ उलमा के नज़दीक अगर बाक़ी मुसलमानों को कुफ़ार से ख़तरा न भी हो, तब भी (कुफ़ार को मारने की नीयत से) उन (ढाल बनाए गए) मुसलमानों पर अस्लाह बरसाना जाइज़ है।” (मजमुआ अलफ़तावा 538/28)

इसी किताब के सफ़ा 45 पर आप रहमतुल्लाह अलैह फ़र्माते हैं “रसूलुल्लाह (ﷺ) की सुन्नत और इज्मा-ए-उम्मत, दोनों इस बात पर मुत्तफ़िक़ हैं कि अगर मुस्लिम हमलावर (साइल) को क़त्ल किये बग़ैर उसके शर से निजात पाने की कोई सूरत न हो तो उसे क़त्ल कर दिया जाए, चाहे जो माल वोह छीनना चाह रहा हो वोह महज़ दीनार (सोने) का एक क़िरात ही क्यों न हो। चुनांचे सहीह हदीस में है कि ‘‘जो शख्स अपने माल का दिफ़ाअ (रक्षा) करते हुए मारा जाए वोह शहीद है।’’ शरीअत ने ढाल बनाए गए मुसलमान कैदियों को क़त्ल करने की इजाज़त इसीलिये दी है क्योंकि बाक़ी मुसलमानों को फ़ित्ने और शिर्क से बचाना और उनके दीन, इज्जत और माल की हिफ़ाज़त करना उन चन्द लोगों की ज़िंदगियां बचाने से ज़्यादा ज़रूरी व अहम है।



## 7. क्या बागी काफिर मुमालिक के खिलाफ किताल, मुस्लिम बागियों के खिलाफ जंग से औला (बढ़कर) नहीं ?

अल्लाह अज़्जवजल का फर्मान है और

وَإِنْ طَائِفَتَانِ مِنَ الْمُؤْمِنِينَ اقْتَتَلُوا فَأَصْلَحُوا بَيْنَهُمَا فَإِنْ بَغَتْ إِحْدَاهُمَا عَلَى الْأُخْرَىٰ فَقَاتِلُوا الَّتِي تَبْغِي حَتَّىٰ تَفِيءَ إِلَىٰ أَمْرِ اللَّهِ فَإِنْ فَاءَتْ فَأَصْلَحُوا بَيْنَهُمَا بِالْعَدْلِ وَأَقْسِطُوا إِنَّ اللَّهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِينَ (9)

अगर मुसलमानों में से दो गिरोह आपस में लड़ जाएं तो उनके दरमियान सुलह कराओ। फिर उनमें से अगर एक गिरोह दूसरे पर ज्यादाती करे तो ज्यादाती करने वाले से लड़ो, यहां तक कि वो अल्लाह के हुक्म की तरफ पलट आए। फिर अगर वोह पलट आए तो उनके दरमियान अदल के साथ सुलह करवा दो और इन्साफ करो, बेशक अल्लाह इन्साफ करने वालों को पसन्द फरमाता है। ”

(अलहुजरात-9)

पस, अल्लाह तआला ने मुसलमानों की बहदत और उनके दीन की इज्जत और माल के तहफ़फ़ुज़ के लिये मुसलमान बागी गिरोह के खिलाफ किताल फ़र्ज करार दिया है। जब मुसलमान बागियों के हवाले से अल्लाह रब्बुल इज्जत का हुक्म यह है तो आप खुद ही सोचिये कि बागी काफिर मुल्कों के बारे में हुक्म क्या होगा? यकीनन उनके खिलाफ किताल तो उससे कहीं बढ़कर फ़र्ज होगा ?

## 8. क्या ग़ासिब मुमालिक के खिलाफ किताल, मुहारबीन (फ़सादी लोगों) के खिलाफ किताल से कहीं बढ़कर फ़र्ज नहीं ?

अल्लाह अज़्ज वजल का फरमान है,

إِنَّمَا جَزَاءُ الَّذِينَ يُحَارِبُونَ اللَّهَ وَرَسُولَهُ وَيَسْعَوْنَ فِي الْأَرْضِ فَسَادًا أَنْ يُقَتَّلُوا أَوْ يُصَلَّبُوا أَوْ تُقَطَّعَ أَيْدِيهِمْ وَأَرْجُلُهُمْ مِنْ خِلَافٍ أَوْ يُنْفَوْا مِنَ الْأَرْضِ ذَلِكَ لَهُمْ خِزْيٌ فِي الدُّنْيَا وَلَهُمْ فِي الْآخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيمٌ (33)

“जो लोग अल्लाह और उसके रसूल के खिलाफ लड़ते हैं और ज़मीन में फसाद फैलाते फिरते हैं उनकी यही सज़ा है कि क़त्ल किये जाएं या सूली दिये जाएं



या उनके हाथ और पांव मुखालिफ़ सिम्त से काट दिये जाएं या उन्हें जिलावतन कर दिया जाए। ये तो हुई उनकी दुनियावी ज़िल्लतो-ख़वारी और आखिरत में उनके लिये बड़ा भारी अज़ाब है।' (अलमाइदा-33)

इस आयते-मुबारका में उन मुसलमान मुहारबीन की सज़ा बयान की गई है जो मुसलमान अवाम को ख़ौफ़ज़दा करें, ज़मीन में फ़साद फैलाएं, लोगों के माल छीनें और इज़्जतें पामाल करें।

इमाम बुख़ारी रह. और इमाम मुस्लिम रह. दोनों रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने "क़बील-ए-उरैना" के बहुओं पर यह सज़ा अमलन नाज़िल की।

(उनज़ुर : अलफ़तदुर्रब्बानी तरती मुसनद अहमद, शयबानी अल अहमद अब्दुर्रहमान अलबना 128/18)

हज़रत अनस रजि. रिवायत करते हैं कि "रसूले-अकरम (ﷺ) ने क़बील-ए-उकल और उरैना के कुछ लोगों पर हद जारी फ़र्माई, जिन्होंने मुसलमान चरवाहे को क़त्ल किया था और ऊंट हंका कर ले गए थे।"

"पस, आप (ﷺ) ने उनके हाथ-पांव कटवा दिये और सलाई फ़िरवाकर उनकी आंखें फोड़ डालीं, फिर उन्हें मैदान में फेंक दिया गया, वो पानी मांगते थे मगर उन्हें पानी नहीं दिया जाता था (यहां तक कि वोह मर गए) अबु-क़लाबा ने (इस सज़ा की वजह बताते हुए) फ़रमाया, ये वोह लोग थे जिन्होंने चोरी की थी, क़त्ल का इर्तिकाब किया था, ईमान लाने के बाद कुफ़्र किया था और अल्लाह और उसके रसूल के खिलाफ़ लड़ते थे।" (सही बुख़ारी, किताबुल-मुहारबीन)

अब आप खुद ही बताइये कि अगर उन मुसलमान मुहारबीन को यह सज़ा दी गई तो उन क़ाफ़िर मुमालिक की सज़ा क्या होगी जो मुसलमानों का दीन, मालो-इज़्जत, सब पामाल कर रहे हों? यकीनन वोह उससे कहीं ज़्यादा मुस्तहिक़ हैं कि उनके खिलाफ़ जंग की जाए और बिलाशुब्हा मुसलमानों पर भी कहीं बड़ा फ़र्ज़ है कि वोह ऐसे मुमालिक के खिलाफ़ जिहाद करें।

ये थे वोह चन्द दलाइल जिनसे साबित होता है कि अगर कुफ़्रार मुसलमानों की सरज़मीन पर हमलावर हों तो नफ़ीरे-आम (यानि तमाम लोगों का जिहाद के लिये निकलना) फ़र्ज़ हो जाता है। हमलावर कुफ़्रार के बिलमुक़ाबिल दिफ़ाई जिहाद करना महज़ फ़र्ज़ ही नहीं, ईमान लाने के बाद अहमतररीन फ़रीज़ा है। जैसाकि इमाम इब्ने-तैमिया रह. फ़रमाते हैं, "ईमान लाने के बाद सबसे अहम फ़रीज़ा दीनो-दुनिया को बर्बाद करने वाले हमलावर दुश्मन (अदुब्बे-साइल) को दफ़ाअ (मार भगाना) करना है।"

(फ़तावा-अलकुबरा-608/4)



## मौजूदा हालात में फ़िलिस्तीन और अफ़ग़ानिस्तान में जारी क़िताल का शरई हुक्म

अब तक की गुफ्तगू से ये बात वाज़ेह हो चुकी है कि कुफ़्फ़ार अगर मुसलमानों की ग़ज़ भर ज़मीन पर भी चढ़ाई कर दे तो उस इलाक़े में बसने वालों और उनके करीब रहने वालों पर जिहाद फ़र्ज़े-ऐन हो जाता है। फिर अगर ये लोग दुश्मन को बाहर निकालने के लिए काफी हों या कोताही करें या सुस्ती दिखाएं तो जिहाद की फ़र्ज़ियते-ऐन का दायरा उनके पड़ौस में बसने वालों तक भी फैल जाता है। फिर फ़र्ज़ियत का ये दायरा बतदरीज़ (क्रमवार) फैलता जाता है, यहाँ तक कि (ज़रूरत पड़ने पर) शरक़न-गरबन (पूरब व पश्चिम) पूरी ज़मीन को अपनी लपेट में ले लेता है और ऐसी सूरत में (यानी जब जिहाद फ़र्ज़े-ऐन हो जाए) बीवी, शौहर की, औलाद, वालदेन की और मकरूज़, क़र्ज़ख़्वाह की इजाज़त का पाबन्द नहीं रहता। (याद रहे कि औरत के लिए जिहाद में जाना तभी जाइज़ होगा जब उसके साथ कोई महरम मौजूद हो (मुतर्जिम) चुनांचे:

1. कोई भी ऐसा क़तआ-ए-ज़मीन जो कभी इस्लामी ज़मीन का हिस्सा रहा हो, जब तक कुफ़्फ़ार के क़ब्ज़े में है (उसे दुश्मन से वापस लेने तक) सब मुसलमानों की गर्दनो पर उसका गुनाह बाक़ी रहेगा।

2. जो शख़्स जितनी ज़्यादा इस्तिताअत, इमक़ानियात (संभावनाएं) और ताक़त का हामिल होगा, उसके कन्धों पर उस गुनाह का बोझ भी उतना ही ज़्यादा होगा। लिहाज़ा मुआशरे में नुमाया हैसियत के हामिल उलमा, (मुमताज़ तरीन व अअला) काईदीन और दाईयों पर गुनाह का ये बोझ आम लोगों की निस्बत कहीं ज़्यादा होगा।

3. मुसलमानों की जिन सरज़मीनों में आज जिहाद जारी है, मसलन अफ़ग़ानिस्तान, फ़िलिस्तीन, फिलिपाइन, कश्मीर, लिबनान, चाढ़, इरीट्रिया (और अब ईराक़, शीशान (चेचेन्या) वग़ैरह भी), उम्मते-मुस्लिमा की मौजूदा नस्ल उन इलाक़ों के दिफ़ाअ के लिए निकलने पर ज़्यादा गुनाहगार होगी, बनिस्बत उन इलाक़ों के जो साबिका अदवार (पुराने इतिहास व दौर) में मुसलमानों से छीने गए। (मसलन, साइबेरिया, बल्क़ान के मुमालिक, स्पेन, यूनान, हंगरी, आस्ट्रिया, पुर्तगाल, क़बरस, निस्फ़ फ़्रांस, जुनूबी यूरोप के दीगर इलाक़े, रूस के ज़ैरेकब्ज़ा मुसलमानों की ज़मीनें, हिन्दुस्तान, थाईलैंड और फिलिपाइन के मक्बूज़ा मुस्लिम जज़ाइर (द्वीप) अरकान, मशरिकी तुर्किस्तान यानी काशगर, सिक्यांग, (चीन का वो हिस्सा जो रूस के मुस्लिम इलाक़ों, पाकिस्तान से लगते कश्मीर के बॉर्डर के बहुत करीब है, वग़ैरह)



हमारी राए में इस वक्त हमारी तमामतर कोशिशों का मर्कज जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान और जिहादे-फ़िलिस्तीन को होना चाहिए, क्योंकि आज के मर्कजी मअरके यहीं हैं, यहाँ काबिज़ मक्कार दुश्मन तौसीअपसन्दाना (साम्राज्यवादी) अज़ाइम के हामिल हैं, इन दोनों महाज़ों पर फतह बहुत से दीगर महाज़ों पर फ़तह की कुंजी है और उन दोनों का दिफ़ाअ दरहकीकत सारी उम्मत का दिफ़ाअ है (वाज़ेह रहे कि जिस वक्त यह फतवा दिया गया था उस वक्त तक अमरीका, बर्तानिया और दीगर सलीबी मुमालिक ने जज़िरा-ए-अरब और ईराक़ वग़ैराह पर चढ़ाई नहीं की थी, न ही दीगर तहरीकाते-जिहाद ने यूं जोर पकड़ा था। (मुतर्जिम))

## अफ़ग़ानिस्तान ही से आगाज़ क्यों ?

दयारे-अरब में बसने वाले मुसलमानों में से जिसके लिए भी फ़िलिस्तीन जाकर जिहाद करना मुमकिन है, उसे पहले फ़िलिस्तीन ही जाना चाहिए और जो वहाँ न जा सकता हो उसे अफ़ग़ानिस्तान का रूख़ करना चाहिए।

जहाँ तक बाकी मुसलमानों का तअल्लुक है तो मेरी राए में उन्हें अफ़ग़ानिस्तान ही से जिहाद का आगाज़ करना चाहिए। मैं उन्हें फ़िलिस्तीन से पहले अफ़ग़ानिस्तान आने की दावत इसलिए नहीं दे रहा हूँ कि अफ़ग़ानिस्तान, फ़िलिस्तीन से ज़्यादा अहम है, बल्कि हकीकत तो ये है कि इस्लाम का अव्वलीन क़ज़्या (पहला फ़ैसला), मअरका-ए-फ़िलिस्तीन ही है। फिलिस्तीन, अम्बिया अलैहिस्सलाम की सरज़मीन है, आलमे-इस्लाम का दिल है, लेकिन बाज़ वजूहात की बुनियाद पर इन हालात में अफ़ग़ानिस्तान ही से जिहाद का आगाज़ करना बेहतर होगा। (उनमें से चन्द वजूहात यहां लिखी जाती हैं)

### 1. अफ़ग़ानिस्तान में इस वक्त मैदान गरम हो चुका है।

अफ़ग़ानिस्तान में इस वक्त जिहाद जारी है, मैदान गरम हो चुका है, और दामने-हिन्दूकुश में जारी ये मअरका इतनी शिदत इख्तियार कर चुका है कि गुज़िश्ता कई सदियों की इस्लामी तारीख़ में इसकी मिसाल नहीं मिलती।

(नाटो अफ़वाज़ यहां पर बुरी तरह से घिर चुकी हैं, और यहां से निकलने के लिये आए दिन उनकी तरफ़ से नई-नई तारीखें व सुलह के अय्यारी व मक्कारी भरे पैगामात भिजवाए जा रहे हैं, रोजाना दर्जनों हमलों की मार व अपने कागजी शेरों की मौतों ने उन्हें मुजाहिदीन के आगे घुटने टेकने पर मज़बूर कर दिया है। याद रहे कि यहां पर जो एक दफ़ा और अल्लाह की मेहरबानी से रूसी अफ़वाज़ की पस्पाई ही की तरह अमेरिका की जिस दिन हार पूरी तरह से मुकम्मल हो जाएगी, इशाअल्लाह दुनिया में शरिअते-मुहम्मदिया के निफ़ाज़ की एक बहुत बड़ी रूकावट दूर हो जाएगी। (वल्लाहू आलम) (मुतर्जिम))



## 2. इस जिहाद का हदफ अल्लाह के कलमे की सरबुलन्दी के सिवा कुछ नहीं ।

जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान में खालिस इस्लामी पर्चम बुलन्द किया गया है जिस पर मोटे हुरूप में “**लाइलाहाइल्लल्लाह मुहम्मदुरसूलुल्लाह**” लिखा हुआ है । इस जिहाद का हदफ अल्लाह के कलमे की सरबुलन्दी के सिवा कुछ नहीं । मुजाहिदीने-अफ़ग़ानिस्तान के इस्लामी इतिहाद ने अपन दस्तूर (उसूल व मकासिद) की दूसरी शिक (लाईन) में लिखा है :

“इस इतिहाद का हदफ अफ़ग़ानिस्तान में हुकूमते-इस्लामिया का कयाम है ।”  
इसी दस्तूर की तीसरी शिक ये है :

“हमारा ये हदफ अल्लाह तआला के इस फर्मान से माखूज है :”

“इनिल हुकमू इल्लालिल्लाह.”

“फरमां रवाई का हक किसी को हासिल नहीं, सिवाए अल्लाह के ।”

चुनांचे हाकमियते-मुतलक अल्लाह रब्बुलआलमीन ही के लिए मखसूस है ।”

## 3. अफ़ग़ानिस्तान में मअरके की क़यादत बुनियादी तौर पर इस्लामपसन्दों ने संभाल रखी है ।

अफ़ग़ानिस्तान में मअरके की क़यादत बुनियादी तौर पर इस्लामियों ने संभाल रखी है और जो लोग आज जिहाद को लेकर चल रहे हैं वोह अफ़ग़ानिस्तान की इस्लामी तहरीकात ही के फरज़ंद हैं, उलमा, तलबा व हुफ़ाजे-कुर्आन हैं ।

दूसरी तरफ फिलिस्तीन में मामला इससे मुख्तलिफ है । वहां हर किस्म के लोग क़यादत के मन्सब पर फाइज़ हैं । जहाँ उनमें सच्चे व मुख़िलस मोमिनीन हैं, वहीं आम से मुसलमान और इश्तराकी भी शामिल हैं, और ये सब एक सेक्यूलर हुकूमत के पर्चम तले जमा हैं ।

## 4. जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान तागूतों के ताबेअ नहीं ।

जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान अभी तक मुजाहिदीन के अपने हाथों में है और वोह हमेशा मुशरिक मुमालिक की जानिब से इम्दाद की पेशकशों को मुस्तरद (रद्द) करते रहे हैं। (जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान को रूस व अमरीका की जंग कहने वाले दरअसल मरिबी ज़राए अबलाग (प्रचार-माध्यमों) की जबान बोलते हैं । ये लोग मुजाहिदीन को अमरीका के आला-ए-कार कहकर औलिया अल्लाह को मतउन (बदनाम) करते हैं । हक़ीक़त में मुजाहिदीन ने मुशरिक मुमालिक से कभी इम्दाद वसूल नहीं की । ताहम उन काफ़िर अक्राम ने जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान के शुरू होने के 5-6 साल बाद जब उसकी कामयाबी को यक़ीनी जाना तो बाज़ मुस्लिम मुमालिक के हाथ अपना अस्लाह (हथियार) फरोख्त



किया जो बाज़ अफगान तंजीमों को मिलता रहा। (मुतर्जिम)

इसके बरअक्स, फ़िलिस्तीन की तहरीक (पी.एल.ओ.) ने तमामतर इंहिसार (निर्भरता) सोवियत इत्तिहाद पर किया, मगर उसने मुश्किलतरीन हालात में फ़िलिस्तीन का साथ छोड़ दिया ताकि वोह तन्हा ही आलमी साजिश का मुकाबला करे। नतीजतन, फ़िलिस्तीन दुनिया के बड़े मुमालिक के हाथों में महज़ एक खिलौना बनकर रह गया। उसकी ज़मीन, उसके लोग और उसकी इज़्जत, सब कुछ दांव पर लग गयी। इसी पर बस नहीं हुआ बल्कि अरब रियासतों में घुसकर भी उनका तआकुब (घेराव) किया गया, यहाँ तक कि उनकी असकरी (फ़ौजी) कुव्वत और उनका कोई मुनज़्जम वजूद बाक़ी न बचा।

## 5. अगर मुख्तलिफ तरह के दुश्मनों से साबिका हो तो इमाम को खतरनाक—तरीन दुश्मन से क़िताल का आगाज करना चाहिए।

अफ़ग़ानिस्तान की सरहदें मुजाहिदीन के लिए खुली हुई हैं। तक्रीबन तीन हजार किलोमीटर तवील सरहद ऐसी है कि उससे बिला रोक-टोक गुज़रा जा सकता है। सरहद के इर्द-गिर्द के इलाक़ों में भी क़बाइल आबाद हैं जो किसी सियासी इंतज़ामिया के तहत नहीं आते और मुजाहिदीन के लिए एक मज़बूत हिफाज़ती फसील (दीवार) का काम देते हैं। (फाटा, वज़ीरिस्तान, आज के हालात में अमेरिका का पाकिस्तान पर सबसे ज़्यादा दबाव इसी सरहद को लेकर है, वो चाहता है कि पाकिस्तान के कश्मीर से लगती अपनी सरहदों से अपनी फौजों को हटाकर अफ़गान बॉर्डर पर लगा दे, ताकि मुजाहिदीन की आज़ादाना आमदो-रफ्त पर मुकम्मल तौर पर रोक लग सके, मुशर्रफ़ व जरदारी जैसे शिकमपरस्तों ने अपने आका अमेरिका की इस मांग को काफ़ी हद तक पूरा भी कर दिया है। (मुतर्जिम) ) फ़िलिस्तीन में सूरते-हाल इससे बिल्कुल मुख्तलिफ है। वहां तो सरहदें हर सिम्त से बन्द हैं, हाथ बंधे हुए हैं और यहूदियों की इंतज़ामिया कड़ी निगाहें रखे हुए हैं कि कहीं कोई मुसलमान यहूदियों से क़िताल के लिए अंदर न घुस आए।

इमाम शाफई रह. “किताबुल-उम्म” में लिखते हैं :

“अगर मुख्तलिफ तरह के दुश्मनों से साबिका हो, जिनमें से बाज़, बाज़ों से ज़्यादा मूजी (बदमाश) या खतरनाक हों, तो इमाम को चाहिए कि मुजी—तरीन या खतरनाक—तरीन दुश्मन से क़िताल का आगाज करे।”

अगर ऐसा खतरनाक दुश्मन बाक़ी दुश्मनों की निस्बत ज़्यादा दूर रहता हो, तब भी उसके खिलाफ़ क़िताल का आगाज करने में इन्शाअल्लाह कोई हर्ज नहीं, यहाँ तक कि दूर के दुश्मन, जिसके खिलाफ़ जंग का आगाज़ किया गया था, उसका खतरा खत्म हो जाए

ये इक़दाम (यानी करीब के दुश्मन को छोड़कर दूर के दुश्मन से लड़ना) “ज़रूरत” को मद्देनज़र रखते हुए ही उठाया जाएगा, क्योंकि “हालते-ज़रूरत” ही में ऐसा काम जाइज़ हो सकता है जो आम हालात में जाइज़ नहीं होते। रसूलुल्लाह (ﷺ) के दौर में भी ऐसा हो चुका है। जब आप (ﷺ) को ये खबर मिली कि “हारिस बिन अबी जरार”



मुसलमानों पर हमले के लिए लश्कर जमा कर रहा है तो आप (ﷺ) ने उस पर हमला कर दिया हालांकि रसूलुल्लाह (ﷺ) के करीब दूसरे दुश्मन भी मौजूद थे, जो उसकी निस्वत नज़दीक थे। इसी तरह जब आप (ﷺ) को मालूम हुआ कि “खालिद बिन अबी सुफ़ियान बिन शोह” मुसलमानों के खिलाफ जंग की तैयारी कर रहा है तो आप (ﷺ) ने हज़रत इब्नेअनीस रज़ि. को खाना फर्माया और उन्होंने जाकर उसे क़त्ल कर दिया। (चुनांचे उस मौके पर भी आप (ﷺ) ने दूर के दुश्मन पर हमले का हुक्म दिया) हालांकि उससे करीबतरी दीगर दुश्मन भी मौजूद थे।” (किताबुल-उम्म, 4/177)

(आखिर में ज़िक्र किए गए वाकिये की तफ़सील कुछ इस तरह है :)

माहे-मुहर्रम 4 हिजरी की 5 तारीख को रसूलुल्लाह (ﷺ) को ये ख़बर मिली कि खालिद बिन सुफ़ियान हज़ली मुसलमानों पर हमला करने के लिए फ़ौज जमा कर रहा है। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने उसके खिलाफ कार्यवाई के लिए हज़रत अब्दुल्लाह बिन अनीस रज़ि. को खाना फर्माया। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अनीस रज़ि. मदीने स अठारह रोज़ बाहर रह कर तैईस (23) मुहर्रम को वापस तशरीफ लाए। वोह खालिद को क़त्ल करके उसका सर भी अपने साथ लाए थे। जब खिदमते-नबवी (ﷺ) में हाज़िर होकर उन्होंने ये सर आप (ﷺ) के सामने पेश किया तो आप (ﷺ) ने उन्हें एक असा (लाठी) मरहत फर्माया और फर्माया कि : **ये मेरे और तुम्हारे दर्मियान क़यामत के दिन निशानी रहेगा।** जब उनकी वफ़ात का वक्त आया तो उन्होंने वसीयत की कि ये असा (लाठी) भी उनके साथ उनके क़फ़न में लपेट दिया जाए। (ज़ादुलमआद, 2/108) (मुतर्जिम)

## 6. ये पहाड़ और उसमें बसने वाले लोग ...

अफ़ग़ानिस्तान में बसने वाले अपनी शुजाअत, जफ़ाकशी और आला-हिम्मती में अपनी मिसाल आप हैं। यूं महसूस होता है गोया अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने ये पहाड़ और उनमें बसने वाले लोग ख़ास तौर पर जिहाद ही के लिए तैयार फर्माए हैं। (जिन मंदर्जा बाला अस्बाब की बिना पर इमाम अब्दुल्लाह अज़्जाम रह. ने अफ़ग़ानिस्तान से जिहाद के आगाज को तर्जोह दी थी, ये लाएहा-अमल बहुत दूरस फ़िक्र और आलमे-इस्लाम के मुख्तलिफ ख़ित्तों में होनेवाले पै-दर-पै जिहादी तजुर्बात व तहरीकात का निचोड़ था। वक्त ने साबित किया कि ये जिहाद इस्लाम के दिफ़ाअ और ग़ल्बे की मुहिम की असास (बुनियाद व पहचान) बन गया। सरज़मीने-ख़ुरासान में इसी जिहाद के तसलसुल तसलील (बराबर) के नतीजे में इस्लामी इमारत कायम हुई, शरीयत का ग़ल्बा हुआ। मरिबी तहज़ीब के फ़साद से पाक तालीमी व मुआशरती ज़िंदगी की एक झलक अहले-इस्लाम को देखने को मिली, इस्लाम के निज़ामे-अद्ल का क़याम मुमकिन हुआ।

हकीकत में अफ़ग़ानिस्तान में आलमी सलीबी कुफ़्र के खिलाफ जारी मौजूदा जिहाद, आज भी अपनी तरफ़ मुतवज़्जह करने के ये सभी अस्बाब अपने अंदर मौजूद रखता है। (वमा तौफ़िकी इल्ला बिल्लाह.) (मुतर्जिम)



❖ (बाब-चहारूम) (अध्याय-चार) ❖

## फर्जे-ऐन और फर्जे-किफ़ाया

फर्जे-ऐन से मुराद है वोह फर्ज जिसे खुद (बनफ़से-नफ़ीस) अदा करना हर मुसलमान पर लाज़िम हो, मसलन नमाज़ और रोज़ा। फर्जे-किफ़ाया का मतलब है वोह फर्ज जो अगर बाज़ लोग अदा कर दें तो बाक़ियों पर उसकी अदायगी लाज़िम नहीं रहती। उसे फर्ज “किफ़ाया” इसीलिए कहा जाता है कि अगर उसकी अदायगी के लिए लोग “काफी” न हों तो तमाम लोग ही गुनहगार होते हैं, और अगर उसकी अदायगी के लिए दरकार तादाद पूरी हो जाए (यानी “किफ़ायत” हो जाए) और फर्ज अदा कर दिया जाए, तो बाक़ी सब लोगों पर से फर्जियत साक़ित हो जाती है।

इब्तदा से फर्जे-किफ़ाया भी फर्जे-ऐन ही की तरह सब पर फर्ज होता है। फर्क ये है कि फर्जे-किफ़ाया को अगर बाज़ लोग अदा कर दें तो बाक़ियों पर से फर्जियत साक़ित हो जाती है, जबकि फर्जे-ऐन हर एक को खुद ही अदा करना होता है, किसी दूसरे के अदा करने से बाक़ियों की जिम्मेदारी खत्म नहीं होती। (अलमुग़नी, इब्ने कुदामा, 345/8)

इसलिए इमाम फ़ख़रूद्दीन राज़ी रह. ने फर्जे-किफ़ाया की यह तारीफ़ बयान की है : “वोह फर्ज जिसका पूरा किया जाना ही असल मक़सूद हो, चाहे उसे कोई भी अदा कर दे।”

(अलमहसूल लिल राज़ी, तहक़ीक़ अलदुक्कूर ताहा जाबिर किस्म-2 सफ़ा 31)  
इमाम शाफई रह. फर्माते हैं :

“फर्जे-किफ़ाया एक ऐसा फर्ज है जिसका हुक्म सबको दिया जाता है, मगर उसकी अदायगी चन्द लोगों ही से करना मक़सूद होती है।”

(उसूल अल फ़िक्हुल अबी जुहरा)

जम्हूर उसूलीन, जिनमें इब्नुलहाजिब रह., आमदी रह. और इब्ने-अब्दुशशकूर रह. भी शामिल हैं, फर्माते हैं कि फर्जे-किफ़ाया (इब्तदा में) सब पर फर्ज होता है, मगर बाज़ लोगों की जानिब से अदायगी बाक़ियों पर से उसकी फर्जियत साक़ित कर देती है।

महज़ हल्की फुल्की मज़ाहिमत (प्रतिरोध) से फर्जियत की अदायगी नहीं हो जाती !

बाज़ लोग जिहाद के शरई हुक्म के बारे में झगड़ते हैं और कहते हैं कि जिहाद आज फर्जे-ऐन नहीं, फर्जे-किफ़ाया है। अगर हम एक लम्हे के लिए उनकी ये बात तसलीम कर लें तब भी उनकी गुलू खुलासी (गलों का छूटना) नहीं होती। अगर जिहाद को आज फर्जे-किफ़ाया मान लिया जाए तब भी अफ़ग़ानिस्तान में जारी जिहाद पूरी दुनिया के तमाम मुसलमानों पर उस वक्त तक फर्ज रहेगा जब तक कि इस फरीजे की अदायगी अपनी



तकमील को नहीं पहुंच जाती। यानी जब तक दुश्मन को अफ़ग़ानिस्तान (और इसी तरह ईराक़, शीशान, और तमाम दीगर मुस्लिम मक़बूजात) से निकाल बाहर नहीं कर दिया जाता, पूरी उम्मत तर्क-जिहाद का गुनाह समेटी रहेगी। इसलिए कि कुफ़र अगर मुसलमानों पर हमलावर हो जाएं तो फ़र्ज़ ये चीज़ नहीं होती कि उनके खिलाफ़ हल्की फुल्की मज़ाहिमत जारी रखी जाए, बल्कि उन्हें मुसलमानों की सरज़मीन से बाहर निकालना असल फरीज़ा होता है, (और जब तक ये हदफ़ हासिल न हो जाए जिहाद हर एक पर फ़र्ज़ रहता है।) एक और बात भी आजकल अक्सर सुनने को मिलती है :

“जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान को पैसों की ज़रूरत है, लोगों की नहीं।”

हकीकत ये है कि इस बात में सिर से कोई वज़न नहीं। अगर जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान को अफ़राद की ज़रूरत ना होती और मुजाहिदीन की तादाद काफी होती तो क्या इतने साल गुज़र जाने के बाद भी दुश्मन अफ़ग़ानिस्तान में बैठा होता? क्या पचास (50) लाख मुसलमान अफ़ग़ानिस्तान से हिजरत करने पर मजबूर होते? क्या सत्तर (70) लाख मक़ामी आबादी को अपने घरों से भागकर अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ही पहाड़ों और सहाराओं में पनाह लेने की ज़रूरत पड़ती? उस्ताज़ सय्याफ़ (अल्लाह उन्हें हिदायत दे) ने इसी बारे में कहा था : “आज चौदह मुमालिक मिलकर हमारे खिलाफ़ जंग लड़ रहे हैं, जिनमें सोवियत इतिहाद, मीसाक़े-वार्सा व नाटो के हलीफ़ (वार्सा व नाटो सन्धि के पैरोकार) और बैनुल्क़वामी इश्तराकियत (आलमी इस्लाम-दुश्मन ताक़तें) सरे-फेहरिस्त हैं, जबकि पूरी इस्लामी दुनिया अभी तक इसी बहस में उलझी हुई है कि जिहाद फ़र्ज़-ऐन है या फ़र्ज़-किफ़ाय़ा? अब तक अफ़ग़ानिस्तान में दस से पन्द्रह लाख मुसलमान शहीद हो चुके हैं, मगर ये लोग ग़ालिबन इस बात के मुन्तज़िर हैं कि अफ़ग़ानिस्तान में बसने वाला आखिरी मुसलमान भी शहीद हो जाए, शायद तब उन्हें यक़ीन आ जाएगा कि जिहाद वाक़ई फ़र्ज़-ऐन हो गया है।”

अहले-अफ़ग़ानिस्तान तो यहाँ तक कहते हैं कि “हमारे दर्मियान आलमे-इस्लाम के एक मेहमान मुजाहिद का मौजूद होना हमें लाखों डॉलरों से ज़्यादा महबूब है।”

उस्ताज़ सय्याफ़ (अल्लाह उन्हें हिदायत दे) ने उलमा और दाई हज़रात के नाम एक पैग़ाम दिया है, जा ‘मजल्ला जिहाद’ के उन्नीसवें शुमारे में छपा है। इस पैग़ाम का मतन (आगे) दिया जा रहा है :



بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

अस्सलामुअलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकतुहू, अलहम्दुलिल्लाह,  
वस्सलातुवस्सलाम अला रसूलिल्लाहि व अला आलिही व अस्थाबिही व मनीअहतदी  
बहदीही, अम्मा बअद :

आप लोग इस बात से बखूबी वाकिफ हैं कि अफ़ग़ानिस्तान में जिहाद शुरू हुए  
काफी अर्सा हो चुका है और अल्हम्दुलिल्लाह, ये जिहाद अभी तक जारी है। आला-ए-  
कलिमतुल्लाह और इस्लामी हुकूमत का क़याम ही जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान का असल  
हदफ है, मगर इस हदफ के हुसूल के लिए ऐसे-ऐसे मुजाहिदीन दरकार हैं जो दीने-इस्लाम  
का गहरा फहम रखते हों और जिहाद के असली इस्लामी तशख़्खुस (ख़ास पहचान) की  
हिफ़ाज़त कर सकते हों। आज ऐसे उलमा और दाईयों की सख़्त ज़रूरत है जो मुजाहिदीन  
की दीनी तर्बियत का काम मुस्तकिल तौर पर संभालें। मैं यहाँ आपको ये भी बताता चलूँ  
कि अफ़ग़ानिस्तान में मौजूद उलमा-ए-किराम और मुरब्बियों की एक बहुत बड़ी तादाद  
मैदाने-जिहाद में शहीद हो चुकी है। लिहाज़ा, हमें ऐसे अफ़राद की कमी बहुत शिद्दत से  
महसूस होती है जो मुजाहिदीन के मदारिस, तर्बियती मअसकरात (फ़ौजी तालीम) और  
मुहाज़ों पर दर्स व तदरीस और दीनी व फिकरी तर्बियत का काम संभालें, ताकि हम अपने  
मतलूबा अहदाफ हासिल कर सकें। बिलाशुब्हा आज हमें किसी भी मैदान के माहिरीन  
और मुतख़स्ससीन (बेहद ख़ास) से बढ़कर उलमा और दाई हज़रात की ज़रूरत है।

अल्लाह हमें और आपको इस्लाम व अहले-इस्लाम की खिदमत करने की  
तौफीक़ अता फर्माए। (आमीन)

आपका भाई,

अब्दुर्रब रसूल सय्याफ़

(पक्तिया, जाजी, 3 शव्वाल 1405 हिजरी )



## जिहाद के लिए इजाज़त लेना कब ज़रूरी है ?

### वालदैन, शौहर और कर्ज-ख्वाह से इजाज़त का मसला

इजाज़त मांगने के शर्ई हुक्म का दारोमदार दुश्मन की सूरते-हाल पर है, लिहाज़ा :

1. अगर दुश्मन अपने इलाके तक ही महदूद हो, सरहदों पर फौज़ भी जमा न कर रहा हो, न ही मुस्लिम मुमालिक पर किसी भी तौर पर असर अंदाज हो रहा हो और मुसलमानों की सरहदों पर दिफाअ के लिए काफी तादाद में सिपाही भी मौजूद हों तो ऐसी हालत में जिहाद फर्जे-किफ़ाया होता है। जब जिहाद फर्जे-किफ़ाया हो तो इजाज़त लेना लाज़िम होता है, क्योंकि वालदैन और शौहर की इताअत फर्जे-ऐन है, और 'फर्जे-ऐन को किफ़ाया पर तर्जीह हासिल होती है।'

2. अगर दुश्मन मुसलमानों की सरहदों पर हमला कर दे या किसी इस्लामी सरज़मीन में घुस आए, तो जैसाकि हम पहले बता चुके हैं, इन हालात में उस इलाके के बासियों और उनके कुर्बो-जवार(आस-पास) में रहने वालों पर जिहाद फर्जे-ऐन हो जाता है। जब जिहाद फर्जे-ऐन हो जाए तो इजाज़त की शर्त साक़ित हो जाती है और किसी का किसी दूसरे को इजाज़त देने या ना देने का इख़्तियार बाक़ी नहीं रहता। लिहाज़ा ऐसे में औलाद वालदैन की, बीवी शौहर की, और मकरूज़, कर्जख्वाह की इजाज़त के बग़ैर निकलेंगे। इजाज़त तलब करने की ज़रूरत उस वक्त तक साक़ित ही रहेगी जब तक कि दुश्मन मुसलमानों की सरज़मीन से निकाल नहीं दिया जाता या जब तक मुजाहिदीन को इतनी तादाद जमा नहीं हो जाती जो दुश्मन को निकालने के लिए काफी हो, ख्वाह उसके लिए कुर्राए-ज़मीन पर बसने वाले तमाम ही मुसलमानों को निकलना पड़े। जिहाद जब फर्जे-ऐन हो जाए तो उसे वालदैन की इताअत पर फौक़ियत हासिल होती है हालांकि वालदैन की इताअत भी (आम हालात में) फर्जे-ऐन है। उस फौक़ियत की वजह ये है कि जिहाद दीन की हिफाज़त का ज़रिया है, जब कि वालदैन की इताअत से एक याद व इन्सानी जानों का तहफ़फ़ुज और देखभाल मक़सूद है, मगर चूंकि "दीन की हिफाज़त" (हिमायतुलदीन), "इन्सानी जान की हिफाज़त" (हिमायतुन्नफ़्स) से ज़्यादा अहम है इसलिए जिहाद को इताअते-वालदैन पर तर्जीह दी जाएगी।

खुद जिहाद किस चीज़ का नाम है ?

इसीलिये, एक मुजाहिद "तहफ़फ़ुजे-दीन" की खातिर अपनी "जान" तक कुर्बान कर देता है और शहादत का आला रूत्बा पा लेता है। नीज़, जिहाद के लिए निकलने से दीन की हिफाज़त होना एक यक़ीनी अम्र है, जबकि ये महज़ एक ज़न्नी (गुमानवाली) बात है कि जिहाद के लिए निकलने से वालदैन को कोई नुक़सान पहुंचेगा और बिलाशुब्हा (फिक़ही क़ाइदे के मुताबिक़) "यक़ीन" को "ज़न" पर तर्जीह हासिल है।



## फर्जे-किफ़ाया और फर्जे-ऐन की मिसाल

फर्ज कीजिए की कुछ लोग साहिले-समन्दर पर सैर कर रहे हैं जिनमें से बाज़ तैराकी के माहिर भी हैं कि इतने में उन्हें एक डूबता हुआ बच्चा मदद के लिए पुकारता नज़र आता है। कोई तैराक भी उसे बचाने के लिए पानी में नहीं कूदता। बिलआखिर जब एक तैराक हिम्मत करके आगे बढ़ने लगता है तो उसके **वालिद उसे मना कर देते हैं।** आप खुद ही बताएं, क्या दुनिया का कोई फ़कीह ये कहेगा कि इस सूरते-हाल में भी उस शख्स को अपने वालिद की इताअत करनी चाहिए और बच्चे को डूबता छोड़ देना चाहिए?

अफ़ग़ानिस्तान के हालात पर यही मिसाल सादिक आती है। आज अफ़ग़ानिस्तान में मासूम बच्चे ज़िबह और इज़्जतें पामाल हो रही हैं, बेक़सूर लोगों को क़त्ल किया जा रहा है, लाशों के टुकड़े हर सिम्त बिखरे हुए हैं। ऐसे में जब ये सरज़मीन मदद के लिए पुकारती है और कुछ मुखलिस नौजवान उसकी पुकार पर लब्बैक कहते हुए आगे बढ़ना चाहते हैं तो हर सिम्त से उन पर तन्कीद की बौछार शुरू की जाती है और हर कोई उसे यही कहता है कि **“भला तुम वालदैन् की इजाज़त के बग़ैर कैसे निकल सकते हो?”**

**हक़ तो ये है कि डूबते हुए बच्चे को बचाना साहिल पर खड़े तमाशा देखने वाले हर तैराक पर फर्ज है।** जब तक कोई तैराक उस की मदद के लिए आगे न बढ़े, तब तक तमाम ही तैराकों से ये मुतालबा है कि वोह बच्चे को बचाएं और सभी पर ऐसा करना फर्ज है। लेकिन अगर उनमें से कोई एक शख्स आगे बढ़कर इस फर्ज की तकमील कर दे तो बाक़ी सबके कन्धों से गुनाह का बोझ हट जाता है, लेकिन अगर कोई भी आगे न बढ़े तो तमाम तैराक ही गुनाहगार होते हैं।

यहाँ ये बात भी ज़हनशीन रहनी चाहिए कि बच्चे को बचाने के लिए वालदैन् से इजाज़त लेने की कोई ज़रूरत नहीं, बल्कि अगर वालदैन् खुद मना करें तब भी उनकी बात नहीं मानी जाएगी। इसलिए कि फर्जे-किफ़ाया शुरू में फर्जे-ऐन ही की तरह सब पर लाज़िम होता है अलबत्ता फर्क सिर्फ़ इतना है कि फर्जे-ऐन के बरअक्स, अगर बाज़ लोग फर्जे-किफ़ाया अदा करें तो बाक़ी लोग गुनाहगार नहीं होते और कोई भी अदा न करे तो सब के सब गुनाहगार होते हैं।

इमाम, इब्ने-तैमिया रह.फर्माते हैं :

**“बस जब दुश्मन हमलावर हो जाए तो किसी इख़ितलाफ़ की गुंजाइश बाक़ी नहीं बचती, क्योंकि इस बात पर तो उम्मत का इजमा है कि (मुसलमानों के) दीन, जान और हुर्मत को हमलावर दुश्मन के शर से बचाना (सब पर) फर्ज है।”**

(फ़तहुल कुबरा- 4/607)

अलगर्ज, जिहाद अगर फर्जे-ऐन हो तो वालदैन् से इजाज़त लेने की कोई ज़रूरत नहीं, अलबत्ता फर्जे-किफ़ाया की सूरत में उनसे इजाज़त लेना ज़रूरी है।



ज़ेल (नीचे) में दी गई दोनों अहदीस को जमा करने से यही नतीजा निकलता है :

1. सहीह बुखारी में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर बिन आस रज़ि. से रिवायत है :

“एक शख्स नबी (ﷺ) के पास आया और आप (ﷺ) से जिहाद की इजाज़त चाही, तो आप (ﷺ) ने दरियाफ्त फर्माया : क्या तुम्हारे वालदैन् जिन्दा हैं? उस शख्स रज़ि. ने कहा, जी हाँ, फर्माया : फिर तुम उन (की खिदमत) में ही जिहाद करो।”

(ये हदीस उन हालात से मुताल्लिक है जब जिहाद फर्जे-किफ़ाया हुआ और इस बात की दलील है कि फर्जे-किफ़ाया जिहाद में वालदैन् से इजाज़त लेना ज़रूरी है। (मुतर्जिम))

2. इब्ने-हिब्बान रह. हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ि. से ही रिवायत करते हैं :

“एक शख्स रसूलुल्लाह (ﷺ) के पास आया और आप (ﷺ) से अफ़ज़ल तरीन अमल के बारे में पूछा, आप (ﷺ) ने फर्माया : “नमाज़”। उसने पूछा : उसके बाद? फर्माया : “जिहाद”। उसने कहा : मेरे वालदैन् भी (जिन्दा) हैं। उस पर आप (ﷺ) ने फर्माया : मैं तुम्हें अपने वालदैन् से नेक सुलूक करने का हुक्म देता हूँ उसने कहा : “उस ज़ात की क़सम ! जिसने आपको हक़ के साथ नबी बनाकर भेजा है ! मैं ज़रूर जिहाद करूंगा और ज़रूर ही उन दोनों (यानी अपने वालदैन्) को छोड़कर निकल जाऊंगा। आप (ﷺ) ने फर्माया : तो तुम बेहतर जानते हो।”

(फतहुल बारी-106/6) (सही इब्ने-हिब्बान, मुसनद अहमद)

ये हदीस इब्ने-हिब्बान रह. ने रिवायत की है और उसे सहीह करार दिया है। हाफ़िज़ इब्ने-हजर रह. ने भी इसे फतहुलबारी में ज़िक्र किया है और इसकी सेहत पर सुकूत (ख़ामोशी) इख़्तियार की है। चुनांचे ये हदीस हसन या सहीह है। हाफ़िज़ इब्ने-हजर रह. इस हदीस की तशरीह में फर्माते हैं :

“दोनों हदीसों में मुवाफ़िक़त पैदा करते हुए, इस (आख़िर में ज़िक्र) हदीसे-मुबारक को उन हालात पर मुंतबिक़ किया जाएगा जब जिहाद फर्जे-ऐन हो जाए।” (वालदैन् से इजाज़त के मामले पर मज़ीद बहस के लिए बाब हफ्तुम देखिए।) (मुतर्जिम)

## शैख़, उस्ताद या मुरब्बी से इजाज़त का मसला

सलफ़ व ख़लफ़ के किसी फ़कीह ने ये बात नहीं लिखी कि शैख़, उस्ताद या मुरब्बी को कोई ऐसा हक़ हासिल है कि उनके शार्गिद इबादात के मामले में उनसे इजाज़त तलब करें, चाहे वोह इबादत फर्जे-ऐन हो या फर्जे-किफ़ाया। जिस किसी को भी इस बात से इख़्तिलाफ़ है वोह कोई शरई नस(सुबूत) या वाज़ेह दलील लेकर सामने आए।

हर मुसलमान के लिए जाइज़ है कि वोह अपने शैख़ या मुरब्बी की इजाज़त के बग़ैर जिहाद के लिए निकले, क्योंकि अल्लाह रब्बुलआलमीन की इजाज़त को हर दूसरी इजाज़त पर तर्ज़ीह हासिल है और अल्लाह ने जिहाद की महज़ इजाज़त ही नहीं दी, इसकी फर्ज़ियत का हुक्म भी नाज़िल फर्माया है।



इब्ने-हुबैरा रह. फर्माते हैं :

“शैतान की चालों में से एक ये भी है कि वोह इन्सान के सामने मअनवी बुत खड़े कर देता है, और वोह अल्लाह को छोड़कर उनकी इबादत में लग जाता है। मसलन किसी शख्स पर हक़ वाज़ेह हो जाता है, मगर वोह कहता है : “हमारे मज़हब में तो ये नहीं है,” या वोह हक़ को छोड़कर किसी ऐसी हस्ती की बात मानता है जो उसके नज़दीक़ काबिले-ताज़ीम है।” (अल इक़दुल याकूतियह: 104)

**काफ़िर मुमालिक जाने पर क्यों ऐतराज़ नहीं किया जाता ?**

हकीक़त ये है कि अगर आज कोई तालिबे-इल्म साईंस, तिब्ब (डॉक्टरी) या तारीख़ (इतिहास) वगैरह के मज़ामीन पढ़ने के लिए यूरोप या अमरीका जाना चाहे और अपने शैख़ और मुरब्बी से इजाज़त लिए बगैर ही निकल पड़े, तो न ही वोह कोई ऐतराज़ करेंगे न कोई और शख्स। हालांकि उन काफिर मुमालिक में फ़ितने मुँह खोले बैठे हैं, ईमान-दुश्मन जुल्मतेहर सिम्त छाई हुई हैं, ख़्वाहिशाते-नफ़्सानी की बेक़ाबू मौजें हर आने वाले को अपनी लपेट में ले लेती हैं और बेहयाई की हैजानअंगेज़ फ़िज़ा कुछ इस अंदाज़ में हैवानी जज़्बात भड़काती हैं कि दिलों में हुब्बे-इलाह की आग़ के बजाए हुब्बुशहावात की नारे-नमरूद (हवस की आग़) जल उठती है।

इसके बरअक्स, अगर यही तालिबे-इल्म रबात (मोर्चे) के लिए घर से निकले या जिहाद में शिरक़त के लिए महाज़ का रूख़ करे तो सब उस पर बरस पड़ते हैं और हर ज़बान उससे यही सवाल होता है कि “तुम बिला इजाज़त कैसे जा सकते हो?” शायद उसके शैख़ ने उस फ़र्माने- नबवी (ﷺ) पर तवज़्जोह देने की ज़हमत ही ग़वारा नहीं की।

“अल्लाह की राह में एक रात पहरा देना ऐसी हजार रातों से अफ़ज़ल है जिनमें रात को क़याम किया जाए और दिन में रोज़े रखे जाएं।” (मुस्लिम)

“एक दिन रात रबात (यानी महाज़ पर पड़ाव) में गुज़ारना पूरा महीना रोज़े रखने और क़याम करने से बेहतर है और अगर वोह (रबात करनेवाला) शख्स मर जाए तो उसका ये अमल जो वोह किया करता था, बराबर जारी रहेगा और उसे रिज़्क की फ़राहमी भी शुरू कर दी जाएगी और वोह (क़ब्र के) फ़ितने से महफूज़ रहेगा।”

(सहीह मुस्लिम किताबुल-अमाराह)

और, सहीह बुख़ारी की किताबुलजिहाद में रिवायत है कि रसूले-अकरम (ﷺ) ने फ़र्माया :

“अल्लाह की राह में एक सुबह या शाम का निकलना दुनिया और उसमें मौजूद हर चीज़ से बेहतर है।” (बुख़ारी)

शैख़ और उनके तलामिज़ा, उस्ताद और उनके शाग़िर्दों, सबको चाहिए कि वोह



आमाले-स्वालेह में एक-दूसरे से आगे बढ़ने और नेकियों में सबक़त ले जाने की कोशिश करें। उन्हें चाहिए कि वोह रसूलल्लाह (ﷺ) की ये नसीहत कभी न भूलें।

“पाँच चीज़ों को पाँच चीज़ों से पहले ग़नीमत जानों, अपनी ज़िंदगी को अपनी मौत से पहले, अपनी सेहत को अपनी बीमारी से पहले, अपनी फ़रागत को अपनी मसरूफ़ियत से पहले, अपनी ज़वानी को अपने बुढ़ापे से पहले और अपने ग़िना (मालदारी) को अपने फ़कर (ग़रीबी) से पहले।”

उन्हें इस फ़र्माने-नवबी (ﷺ) पर भी ग़ौर करना चाहिए

“क़िताल फी सबीलिल्लाह के लिए सफ़ में एक पहर खड़े होना (इबादत के लिए) साठ साल क़याम करने से बेहतर है।”

(अहमद, हाकिम व दारमी, सहीह जामेअ-अस्सगीर लिल्अलबानी-4305)

इमाम शाफई रह. फ़र्माते हैं : “इस बात पर उम्मत का इजमा है कि जिस शख्स पर रसूलल्लाह (ﷺ) की कोई सुन्नत वाज़ेह हो जाए, उसके लिए हलाल नहीं कि वोह किसी के भी कहने पर उसे तर्क करे।”





(बाब-शशुम)(अध्याय-छठा)



## जिहाद बिलमाल की फर्जियत

बिलाशुब्हा जान से जिहाद का मर्तबा माल से जिहाद की निस्बत ज़्यादा ऊँचा है। यही वजह है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) के ज़माने में फी सबीलिल्लाह खर्च करने वाले साहिबाने-सरवत (मालदार लोगों) को भी अपनी जानें जिहाद में खपाने से माफ नहीं रखा गया। हज़रत उस्मान रज़ि. और हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औफ रज़ि. (मक्का व मदीना के अमीरतरीन लोगों) की वाज़ेह मिसालें हमारे सामने मौजूद हैं।

अपनी जान समेत जिहाद में शिर्कत इसीलिए ज़रूरी है कि जिस्म व रूह की जो आला तर्बियत व नश्रो-नुमा दुश्मन के खिलाफ अमली मअरके में होती है, वह कहीं और नहीं होती। जब ही तो रसूले-अकरम (ﷺ) ने एक सहाबी रज़ि. को नसीहत करते हुए फर्माया : 'और तुम पर लाज़िम है कि जिहाद करते रहना क्योंकि बिलाशुब्हा ये इस्लाम की रहबानियत है।' (अहमद सहीहुल जामेअ अस्सगीर लिलअलबानी-4305) और यही वजह थी कि जब एक सहाबी रज़ि. ने आप (ﷺ) से दरयाफ्त फर्माया : "क्या (मुजाहिद) बन्दे को क़ब्र में आजमाइश का सामना करना पड़ता है?" आप (ﷺ) ने जवाबन फर्माया : "(नहीं, बल्कि) उसके सर पर तलवारों का चमकना ही उसकी आजमाइश के लिए काफी है।"

(हदीस, सहीह, निसाई सहीहुल जामेअ अस्सगीर लिलअलबानी-4359) और इसीलिए रसूलुल्लाह (ﷺ) ने जिहाद छोड़कर दुनिया में मग़न हो जाने से ख़बरदार फर्माया और एक मर्तबा हल्के धारदार लोहे की तरफ इशारा करते हुए फर्माया :

"कभी ऐसा नहीं हुआ कि ये चीज़ किसी घर में दाखिल हुई तो अल्लाह ने साथ ही वहां ज़िल्लत भी दाखिल न फर्मा दी हो।"

(बुखारी, सिलसिलतुल हदीस सहीह-लिलअलबानी-10)

जब इस्लाम की बक्रा का मसला दर्पेश हो तो दुनियावी मसरूफ़ियात में मशगूल होकर रह जाना शरिअत की निगाह में हराम और मुहलिक गुनाह है।

एक सहीह हदीस में रिवायत है कि आप (ﷺ) ने फर्माया : 'जब तुम ईना (यानी सूदी लेन-देन) करने लगोगे और गाय बैलों की दुमें पकड़ लोगे, और खेती बाड़ी (की ज़िंदगी) में (मग़न होकर) मुतमईन हो जाओगे और जिहाद छोड़ बैठोगे तो अल्लाह तुम्हारे ऊपर ऐसी ज़िल्लत मुसल्लत कर देगा जो वोह उस वक़्त तक नहीं हटाएगा जब तक तुम अपने दीन की तरफ वापस न लौट आओ।'

(अबुदाउद, सिलसिलतुल अहादीसुल सहीहतुल लिलअलबानी-11)

एक और मौक़े पर नबी-ए-अकरम (ﷺ) ने ये बात फर्माई : "जायदादें मत



बनाओ (और पेशे मत अपनाओ) वरना तुम दुनिया की मुहब्बत व रगबत में मुब्तिला हो जाओगे।" (तिर्मिजी किताबुल-जुहद अनरसूलुल्लाह, हदीस सही, सिलसिलतुल अहादीस लिल अलबानी-12)

हदीस में वारिद होने वाले लफ्ज़ "ज़यअतु" का मतलब है "जाएदाद" या "पेशा"।

मज़कूरा बाला अहादीस में रसूलुल्लाह (ﷺ) ने तमामतर मताएँ-दुनिया (माल व ऐशो-इशरत के सामान) का ज़िक्र फरमा दिया है और हमारी मसरूफियात के सारे ही अस्बाब गिनवा डाले हैं, यानी ज़राअत, रिबा और सूदी हीलों वाली तिजारत, हैवानाती पैदावार, सनअतो-हर्फ़त (कारोबार) और कोई भी दूसरा पेशा। एक ऐसे वक्त में जब इस्लाम की बक्रा का मसला दर्पेश हो, उम्मत-मुस्लिमा अपनी ज़िंदगी व मौत का मअरका लड़ रही हो, इन दुनियावी मसरूफियात में मशगूल होकर रह जाना शरिअत की निगाह में हराम और मुहलिक गुनाह है।

## जिहाद-बिल-माल भी फर्जे-ऐन हो जाता है !

जहाँ तक "जिहाद बिलमाल" का ताअल्लुक है, तो जब भी मुजाहिदीन को माल की ज़रूरत हो यह फर्जे-ऐन हो जाता है, चाहे उस वक्त "जिहाद बिन्नफ्स" बजाए खुद फर्जे-किफ़ायया ही क्यों न हो और जैसा कि इमाम इब्ने-तैमिया रह. ने लिखा, ऐसे हालात में ये फर्ज औरतों पर भी आईद होता है, हत्ताकि छोटे बच्चों का माल भी फी सबीलिल्लाह खर्च करना लाज़िम हो जाता है। (फतहुल कुबरा-4/607)

इसीलिए माल जमाकर करके रखने को भी ऐसे हालात में हराम करार दिया गया है जब उसकी ज़रूरत हो।

## एक तरफ़ कहतज़दगान (अकालग्रस्त), दूसरी तरफ़ जिहाद की ज़रूरियात !

जब इमाम इब्ने-तैमिया से पूछा गया : "अगर माल थोड़ा बढ़ जाए और एक तरफ़ कहतज़दा भूखे हों और दूसरी जानिब जिहाद की ज़रूरियात हों, जिन्हें पूरा ना करने से जिहाद को नुक़सान पहुंचने का अंदेशा हो, तो तर्जीह किसे दी जाए ?"

आपने जवाबन फर्माया : "हम जिहाद को तर्जीह देंगे, चाहे कहतज़दा लोगों को मौत ही क्यों न वाक़ेअ हो जाए। इसलिए कि मसला, "मसला-ए-ततुररस" (यानी कुफ़्रार के मुसलमान कैदियों को बतौर दाल इस्तेमाल करने के मसले) की तरह है, बल्कि इससे भी बढ़कर है। क्योंकि ततुररस के मसले में मुसलमान हमारे फ़ेअल से क़त्ल होते हैं जबकि उन (कहतज़गान) की मौत अल्लाह के फ़ेअल से वाक़ेअ होती है।" (फ़तावा अल-कुबरा, 607/4)



(मुराद ये है कि अगर ढाल बनाए गए मुसलमानों को मजबूरन मारना जाइज है तो जिहाद की नागुजीर ज़रूरतों के मौके पर कहतज़दगान को मरते हुए छोड़ देना बदर्जा-ए-अव्वल जाइज होगा। याद रहे कि अगर कुफ़ार मुसलमान कैदियों को बतौर ढाल इस्तेमाल करें और कुफ़ार को पछाड़ने की इसके सिवा कोई सूरत न हो कि मुसलमान भी साथ ही मारे जाएं, तो फ़क़हा हमला करने की इजाज़त देते हैं। (मुतर्जिम))

इमाम कुर्तबी रह. फर्माते हैं : “तमाम उलमा इस बात पर मुत्तफ़िक़ हैं कि अगर मुसलमानों को कोई माली ज़रूरत पेश आ जाए और उस वक्त तक ज़कात अदा की जा चुकी हो, तो लोगों पर फर्ज होगा कि वह इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए अपना ज़ाती माल खर्च करें।” (अलकुर्तबी-242/2)

इसी तरह इमाम मालिक रह. फर्माते हैं :

“मुसलमानों पर अपने कैदियों को छुड़वाना फर्ज है, चाहे उनका सारा माल ही इस काम में खप जाए।”

इमाम कुर्तबी रह. इमाम मालिक रह. का ये कौल नक़ल करने के बाद लिखते हैं

“इस बात पर भी तमाम उलमा-ए-उम्मत का इजमाअ है।”

(अलकुर्तबी 242/2)

इस्लाम की निगाह में दीन का तहफ़ूज़, जान के तहफ़ूज़ से, जबकि जान का तहफ़ूज़, माल के तहफ़ूज़ से ज़्यादा अहम है। बस दौलतमन्द लोगों का माल मुजाहिदीन के खून से ज़्यादा क़ीमती नहीं कि वोह उसे बचा कर रख।

## अगर मालदार लोग महज़ अपने एक दिन का खर्च

### अफ़ग़ान मुजाहिदीन को दे दें —:

साहिबाने-सरवत (मालदार लोग) अपने माल के बारे में अल्लाह के हुक्म की तरफ़ मुतवज्जह हों। आज जिहाद को माली मुआविनत की सख़्त ज़रूरत है। मुसलमानों का दीन व ईमान खतरे में है और उनकी बस्तियां की बस्तियां फना होती नज़र आ रही हैं, मगर कितने ही मालदार अब भी अपनी ख्वाहिशात को रोकें, अपने आराम व आसाइश पर पैसा बर्बाद करने से बाज़ रहें और उन्हीं पैसों का रूख़ अफ़ग़ानिस्तान में बरसरे-पैकर मुजाहिदीन की तरफ़ फेर दें ... उन मुजाहिदीन की तरफ़ जो सदियों से मर रहे हैं, जिनके नंगे पैरों को बर्फ़ चाट गई है, जिनके पास खाने को दो वक्त की रोटी तक नहीं, ना ही अपने दिफाअ और तहफ़ूज़ के लिए अस्लाह है ... मैं कहता हूँ कि अगर मालदार लोग महज़ अपने एक दिन का खर्च उन अफ़ग़ान मुजाहिदीन को दें, तो इन्शाअल्लाह ये बज़ाहिर मामूली सी कुर्बानी बहुत बड़ी तबदीली का बाईस होगी और फतह व नुसरत की जानिब पेशक़दमी का मुअस्सर ज़रिया बनेगी।

अब तो इस दौर के बहुत से जय्यिद उलमा भी ये फतवा दे चुके हैं कि अफ़ग़ानिस्तान



के मुजाहिदीन को ज़कात देना, कुर्बे—इलाही का ज़रिया बनने वाले अज़ीमतरीन अफ़आल में से है और उसका शुमार सद्के की अफ़ज़लतरीन सूरतों में होता है। ये फतवा देने वालों में शैख अब्दुलअज़ीज़ बिन बाज़ रह. भी शामिल हैं।

## खुलासा—ए—बहस

**अव्वल:** आज दुनिया के हर मुसलमान पर अपनी जान से जिहाद करना फर्जे—ऐन है।

**दौम:** आज किसी भी शख्स को ये हक़ हासिल नहीं कि वोह किसी दूसरे को जिहाद पर जाने की इजाज़त दे या उससे मना करे। चुनांचे औलाद को वालदैन से इजाज़त लेने की भी कोई ज़रूरत नहीं।

**सौम:** जिहाद बिल माल भी आज फर्जे—ऐन है, और जब तक जिहाद को माल की ज़रूरत है मुसलमानों के लिए हराम है कि वोह माल जमा कर—करके रहें व रखें।

**चहारूम:** बिलाशुब्हा जिहाद तर्क करना नमाज़, रोज़ा तर्क करने की तरह ही है। बल्कि आज के हालात में तर्क—जिहाद का गुनाह इससे भी बढ़कर है। इब्ने—रूश्द ने इस बात पर तमाम उलमा का इत्तिफ़ाक़ नक़ल किया है कि अगर जिहाद फर्जे—ऐन हो जाए तो उसकी फर्जियत, फर्ज हज से भी बढ़ कर होती है।



## =====(बाब-हफ्तुम) (सातवां अध्याय)=====

सवालात, जो अक्सर ज़हनों में उठते हैं !

पहले चन्द इब्तदाई बातें समझना निहायत ज़रूरी है,

(अ) आज जिहाद की फर्जियत नमाज़, रोज़े की मानिन्द, बल्कि उनसे भी बढ़कर है —:

इन सारे दलाइल के बाद ये बात बिल्कुल वाज़ेह हो जाती है कि अपनी जान से जिहाद करना आज फर्जे-ऐन है और उसकी फर्जियत नमाज़ रोज़े ही की मानिन्द, बल्कि उनसे भी बढ़कर है। इमाम इब्ने-तैमिया रह. फर्माते हैं :

“ईमान लाने के बाद सबसे अहम फरीज़ा दीन व दुनिया को बर्बाद करने वाले हमलावर दुश्मन को पछाड़ना है । ” (फ़तहुल कुबरा-608/4)

(दिफाई जिहाद के अहमतररीन फर्ज होने से ये मुराद क़तअन नहीं कि जिहाद हमेशा नमाज़ से ज़्यादा अहम होता है, क्योंकि ये बात मालूम है कि नमाज़ हमेशा फर्जे-ऐन होती है और इस्लाम के अरकाने-खम्सा में से है, जबकि जिहाद के मआमले में ये दोनों बातें नहीं पाई जाती, बल्कि दिफाई जिहाद के अहमतररीन फर्ज होने का ताअल्लुक तो अदुव्वे-साइल के हमले के मौक़े से है, जब जिहाद आम हालात के बरखिलाफ़ फर्जे-ऐन हो जाता है ।

रही बात ये कि अहमतररीन फर्जे-ऐन अल्लाह की तौहीद की मअरफ़त और इक्रार है तो ये बात यक्कीनन दुरूस्त है, लेकिन यहां से ऐतराज इसलिए ख़ारिज अज़ बहस है कि जिहाद के हुक्म के मुख़ातिब ही वो लोग हैं जो पहले से अक्कीदा-ए-तौहीद पर ईमान ला चुके हैं । खुद जिहाद भी तौहीद और उसकी दावत की बालादस्ती का ज़रिया है, आप (ﷺ) ने फर्माया, “मुझे क़यामत तक के लिए तलवार के साथ मबउस किया गया है, यहाँ तक कि अल्लाह वहदहू लाशरीक की इबादत की जाने लगे ।” (अहमद)

जहाँ तक ईमान की तफ़सीली मअरफ़त (ईमाने-मुफ़स्सिल) का तअल्लुक है जो दरअसल इल्म का समरा (निचोड़) है, तो उसका हुसूल फर्जे-किफ़ाया की हैसियत रखता है। अहकामे-तौहीद की तफ़सीली तालीम की भी यही हैसियत है । इसलिए अगर जिहाद फर्जे-ऐन हो तो उसकी तालीम को मुक़द्दम रखना दुरूस्त न होगा । ताहम तौहीद के जिन मौजूआत की तालीम नागुज़ीर हो तो उसे हस्बे-मौक़ा जिहाद के साथ जारी रखा जाएगा । जैसा कि एक सहीह हदीस में जो सुनने-तिर्मिज़ी और मुस्नद अहमद में दर्ज है, वारिद है कि ग़ज़वाए हुनैन में जो नए मुसलमान शरीके-जिहाद थे, उन्होंने रसूलुल्लाह (ﷺ) से एक ऐसे दरख़्त (ज़ाते-अनवात) के तअय्युन का मुतालबा किया, जैसा मुशिरकीन ने अपने लिए मुक़रर कर रखा था, वोह उसके पास मुअतकिफ़ रहते थे और अपना अस्लाह आविज़ाँ (लटकाया) करते थे ।

रसूलुल्लाह (ﷺ) ने इसके जवाब में फर्माया था ‘उस ज़ात की क़सम ! जिसके



हाथ में मेरी जान है तुमने ऐसी ही बात की जैसी कि बनी इसराईल ने मूसा अलै. से कही थी, (ऐ मूसा अलै.!) हमारे लिए भी कोई माबूद ऐसा ही मुकर्रर कर दीजिए जैसे (कुफ़ार) के ये माबूद हैं, फरमाया, वाक़ई तुम लोगों में बड़ी जिहालत है।'

अल्लरज़, रसूलुल्लाह (ﷺ) ने उन सब मुसलमानों को अपने साथ शरीके-जिहाद रखा। बल्कि आप (ﷺ) ने नए ईमान लाने वालों और सिर्फ तौहीद व रिसालत की बुनियादी ग़वाही देने वालों को भी जिहाद में शिर्कत पर उभारा और शहादत मिलने पर जन्नत की बशारत दी। (मुतर्ज़िम)

## दिफाई जिहाद के अहमतरीन फर्जे—ऐन होने के दलाइल

जिहाद के दौरान नमाज़ को मुअख़्खर करके दो वक़्त की नमाज़ें जमा भी की जा सकती हैं, नमाज़ की रकअत मुख़्तसर करना भी जाइज़ है और अदायगी—ए—नमाज़ की कैफियत तबदील करने की भी इजाज़त है। सहीहैन में रिवायत है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने ग़ज़्वा—ए—ख़न्दक के मौक़े पर फर्माया :

“अल्लाह उनके घरों और क़ब्रों को आग से भर दे जैसे उन्होंने हमें सलाते-वुस्ता (यानी नमाज़े—अस्र) पढ़ने का मौक़ा नहीं दिया, यहां तक की सूरज गुरुब हो गया।” (सही बुख़ारी)

इसी तरह एक मुजाहिद को रमज़ान में रोज़ा छोड़ने की इजाज़त भी है, जैसा कि सहीह मुस्लिम में रिवायतकर्दा हदीस है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फतहे—मक्का के मौक़े पर मक्का की जानिब सफ़र के दौरान (वक़्त से पहले) रोज़ा खोल लिया और सहाबा—ए—किराम रजि.से फर्माया :

“बेशक सुबह तुम्हें अपने दुश्मन से टकराना है और रोज़ा खोल (कर कुछ खा) लेना तुम्हारे लिए ज़्यादा कुव्वत का बाइस होगा, लिहाज़ा रोज़ा खोल लो।”

(सही मुस्लिम, किताबुस्सियाम)

## फर्जे—ऐन में इजाज़त लेने या देने का सवाल ही नहीं

हम ये बात भी जान चुके हैं कि जिहाद जब फर्जे—ऐन हो जाए तो उसकी अदाएंगी के लिए किसी से इजाज़त नहीं मांगी जाती। जिस तरह नमाज़े—फज़्र अदा करने के लिए न वालदैन से इजाज़त तलब करने की ज़रूरत होती है, न अपने शैख़ से, न ही (कबीले, जमाअत या मुल्क के) सरबराह से, इसी तरह जिहाद पर जाने के लिए भी किसी से इजाज़त की ज़रूरत नहीं। मसलन अगर कोई बाप बेटा एक ही घर में सो रहे हों और बेटा उठकर नमाज़े—फज़्र अदा करना चाहे और बाप सोता रहे, तो क्या आप में से कोई भी ये कहेगा कि बेटे को नमाज़ के लिए बाप की इजाज़त तलब करना ज़रूरी है ? ये तो एक मसला हुआ।

अब ज़रा एक लम्हें के लिए ये फर्ज कर लें कि ये बाप अपने बेटे को नमाज़े—फज़्र पढ़ने से मना कर देता है ताकि उसके जागने से बाकी घरवालों की नींद ख़राब न हो, या



इसलिए कि बाप को नमाज़ सिरे से पसन्द ही नहीं, या किसी भी और वजह से, तो क्या ऐसे में बेटे के लिए बाप की बात मानना जाइज़ होगा ? इस सवाल का जवाब तो रसूले-अकरम (ﷺ) खुद ही अपने अहकामात में वाज़ेह फर्मा चुके हैं । (वाज़ेह रहे कि फर्माने-रसूल (ﷺ) है कि इताअत सिर्फ़ नेकी के कामों में है । (मुतर्जिम))

**तर्के-जिहाद का हुक्म देना खालिके-कायनात की नाफरमानी है ।**

रसूलुल्लाह (ﷺ) का फर्मान है :

**“इताअत सिर्फ़ नेकी के कामों में है ।”**

(मुत्तफ़िक अलैह, सहीह जामेअ-अस्सगीर लिल अलबानी, 7379,3967)

आप (ﷺ) ने ये भी फर्माया :

**‘अल्लाह अज़्जवजल की नाफरमानी में किसी मख़लूक की इताअत (जाइज़) नहीं ।’**

(सही सनद, मुसनद अहमद व हाकिम)

नीज़ ये फर्माया :

**“कोई इताअत नहीं की जाएगी उस शख्स की जो अल्लाह अज़्जवजल की इताअत न करे ।” (रिवायत सहीह, मुसनद अहमद )**

चूँकि जिहाद तर्क करना खालिके-कायनात की नाफरमानी है, इसलिए मख़लूक में से चाहे कोई भी इसका हुक्म दे, उसकी इताअत नहीं की जाएगी । जिहाद के लिए इजाज़त तलब करने की शर्ई हैसियत को मज़ीद वाज़ेह करने के लिए मैं अल्लाह से तौफीक मांगते हुए चन्द और बातें कहना चाहूँगा ।

सहाबा-ए-किराम रजि. का तरीक़ा तो यही था कि जब एक बार जिहाद का अलम बुलन्द कर दिया जाता और उम्मत के लिए नफीरे-आम का ऐलान कर दिया जाता तो आप हज़रात रजि. जिहाद में शिर्कत के लिए रसूलुल्लाह (ﷺ) से इजाज़त नहीं मांगते थे। सहाबा रजि. तो जिहाद की नीयत करने और जंग के लिए नाम लिखवा देने के बाद रसूले-अकरम (ﷺ) से इज़्जत तलब करने आते थे, जिसकी हैसियत जिहाद में शिर्कत के लिए इजाज़त की नहीं होती थी, बल्कि वोह तो दरअसल जिहाद में अपने क़िरदार से मुताअल्लिक़ मश्वरा होता था, जिसकी रोशनी में हर सहाबी रजि. अपनी ज़िम्मेदारी अदा करते थे ।

इमाम अहमद रह. और इमाम नसाई रह. की रिवायतक़र्दा सहीह हदीस में मुआविया बिन जाहिमा अलसुलैमी रजि. फर्माते हैं कि हज़रात जाहिमा रजि. नबी-ए-अकरम (ﷺ) के पास आए और फर्माया :

**“ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ) ! मैं क़िताल में शिर्कत का इरादा कर चुका हूँ और आपसे मश्वरा लेने आया हूँ ।”**

**“आप (ﷺ) ने पूछा: क्या तुम्हारी वालदा (ज़िन्दा) है?”**



सहाबी रजि. ने फर्माया : जी !

“ तो आप (ﷺ) ने फर्माया, उन्हीं के पास रहो, क्योंकि बिलाशुब्हा जन्नत उनके कदमों में है । ” (नैलुल-अवतार लिल शौकानी 37/8)

जबकि एक और रिवायत में ये अल्फ़ाज़ मिलते हैं : “मैंने अपना नाम (फलाँ) गज़वे में लिखवा दिया है”

ये मामला तब है जब जिहाद फर्जे-किफ़ाया हो । लेकिन जब जिहाद फर्जे-ऐन हो जाए और शरिअत सब ही लोगों से निकलने का मुतालबा करे, तो ऐसे में रसूलुल्लाह (ﷺ) से जिहाद (से पीछे रह जाने) के लिए इजाज़त तलब करने को मुनाफ़िक़त की निशानी करार दिया गया है । अल्लाह तआला का फर्मान है :

اَيَسْتَاذِنُكَ الَّذِينَ يُؤْمِنُونَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ اَنْ يُجَاهِدُوْا بِاَمْوَالِهِمْ  
وَاَنْفُسِهِمْ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ بِالْمُتَّقِيْنَ (44) اِنَّمَا يَسْتَاذِنُكَ الَّذِينَ لَا يُؤْمِنُونَ

بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَارْتَابَتْ قُلُوبُهُمْ فَهُمْ فِي رِيْبِهِمْ يَتَرَدَّدُوْنَ (45)

‘जो लोग अल्लाह और रोज़े-आखिरत पर ईमान रखते हैं वोह तो आपसे इजाज़त नहीं मांगते कि (पीछे रह जाएं, बल्कि चाहते हैं कि) अपने मालों और अपनी जानों से जिहाद करें और अल्लाह मुत्तकी लोगों से खूब वाकिफ़ है। इजाज़त तो वही लोग मांगते हैं जो अल्लाह पर और आखिरत के दिन पर ईमान नहीं रखते और उनके दिल शक में पड़े हुए हैं और वोह अपने शक में डंवाड़ोल हो रहे हैं ।’

(सूर:तौबा:44-45)

इसी तरह हमारे इल्म में ऐसी कोई बात भी नहीं कि सहाबा-ए-किराम रजि. या ताबईन रह., रसूलुल्लाह (ﷺ) की वफ़ात के बाद खुलफ़ा-ए-राशिदीन, यानी हज़राते अबुबकर, उमर, उस्मान और अली रजि. से जिहाद में शिर्क़त के लिए इजाज़त मांगा करते थे । क्या आपके ख़याल में जिहाद में शरीक होने वाला हर शख्स पहले हज़रत अबूबकर सिद्दीक़ रजि. के पास जाकर इजाज़त तलब करता था? यकीनन, ऐसा कभी नहीं हुआ, क्योंकि अलमे-जिहाद का बुलन्द हो जाना और लश्कर का मैदान में निकल आना ही असल अहमियत का हामिल होता है, जिसके बाद किसी से इजाज़त की ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती ।



## इजाज़त का मामला तो दुश्मन पर हमले की तदबीर व तर्तीब वगैरह से मुताअल्लिक है।

इसके बाद के दौर में भी हमें कोई बात नहीं मिलती कि मुसलमान रबात या जिहाद की इबादत अदा करने के लिए पहले अमीरुलमोमिनीन से इजाज़त हासिल करते थे, न ही हमें पूरी इस्लामी तारीख में कोई एक भी ऐसा वाक़िया नज़र आता है जब मुसलमानों के अमीर ने बिला-इजाज़त जिहाद व क़िताल करने के 'जुर्म' में किसी शख्स को सज़ा दी हो। इजाज़त तो ऐन क़िताल में या दुश्मन पर हमले के वक्त जिहाद के अमीर या मअरके के क़ाइद से ली जाती है, (जिसका मक़सद ये पूछना नहीं होता कि "मैं जिहाद में शिर्कत करूँ या नहीं?" बल्कि) ये इजाज़त जिहाद में कूद पड़ने के बाद उमूरे-जिहाद को मुनज़्जिम और मुन्ज़बत (व्यवस्थित) अंदाज़ से चलाने के लिए ली जाती है, ताकि मुसलमानों में से कोई शख्स क़ब्ल अज़ वक्त (और बेतर्तीब अंदाज़ में) हमला करके मुजाहिदीन की सारी मन्सूबाबन्दी ही ख़राब न कर डाले।

इमाम औज़ाई रह. और बाज़ दीगर फ़ुक़हा के नज़दीक इजाज़त की ज़रूरत सिर्फ़ उन लोगों को है जो बाक़ायदा फ़ौज का हिस्सा हों और उन्हें बैतुलमाल से तन्ख़्वाह मिलती हो। रमली रह. फर्माते हैं : "इमाम या उसके नाइब की इजाज़त के बग़ैर दुश्मन के खिलाफ़ लड़ना मकरूह है, लेकिन उन (तीन) हालात में कोई कराहत नहीं :

1. जब अमीर ने जिहाद को मुअत्तल(स्थगित) कर रखा हो।
2. जब इजाज़त मांगने से असल मक़सद ही फौत हो जाए, (मसलन जब ये नज़र आ रहा हो कि अगर इजाज़त मिलने का इंतज़ार किया गया तो मुसलमानों का नुक़सान हो जाएगा या दुश्मन कार्यवाही करके भाग निकलेगा, वगैरह-वगैरह)
3. जब ग़ालिब गुमान यही हो कि अमीर इजाज़त नहीं देगा, जैसाकि बल्कीनी रह. ने भी फर्माया है। (नहायतुल महताज-60/8)

मैं अपनी बात फिर दोहराऊंगा कि ये सब अहकामात उन हालात के लिए हैं जब जिहाद फ़र्जे-किफ़ाय़ा हो। लेकिन जब जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाए तब इजाज़त मांगना या देना, कुछ बाक़ी नहीं रहता।

इब्ने-रुशद फर्माते हैं :

"इमाम ग़ैर आदिल ही क्यों न हो उसकी इताअत ज़रूरी है, जब तक कि वोह मअसियते-इलाही (अल्लाह की नाफ़रमानी) का हुक्म न दे और जिहाद के फ़र्जे-ऐन हो जाने के बाद जिहाद से रोकना मअसियत (गुनाह) ही है।"

(फ़तहुल-आला, अल मालिक लिल शैख़ अलीश-390/1)



# जब तक मुजाहिदीन की तादाद नाकाफी हो, इजाज़त मांगने का सवाल ही पैदा नहीं होता !

इस मसले की मज़ीद वज़ाहत करने के लिए मैं ये बताता चलूँ कि फर्जे—किफ़ायत में भी इजाज़त मांगने या देने का सवाल तब ही खड़ा होता है जब 'किफ़ायत' पूरी हो जाए, यानी जब फरीज़—ए—जिहाद की अदाएंगी के लिए मुजाहिदीन की तादाद काफ़ी हो जाए। लेकिन इतनी तादाद जमा होने से पहले जिहाद का हुक्म सब ही के लिए होता है और जब तक कुछ लोग इस फर्ज को अदा नहीं कर देते जिहाद सब पर फर्ज रहता। यानी "किफ़ायत" के पूरे होने से पहले फर्जे—ऐन और फर्जे—किफ़ायत में कोई फर्क नहीं। लिहाज़ा जब तक 'किफ़ायत' पूरी नहीं होती, फर्जे—किफ़ायत जिहाद के लिए भी किसी से इजाज़त नहीं मांगी जाएगी। इजाज़त देने लेने का सवाल तब खड़ा होगा जब हमें मालूम हो जाए कि अर्जे—मअरके में मुजाहिदीन की इतनी तादाद जमा हो चुकी है जो फरीज़ा—ए—जिहाद की अदाएंगी के लिए काफ़ी है।

ऐन मुमकिन है कि कोई शख्स ये सारी बातें पढ़ने के बाद कहे कि : हमें यक़ीन आ गया है कि जिहाद आज फर्जे—ऐन है, और इसके लिए किसी से इजाज़त लेने की क़तअन कोई ज़रूरत नहीं, लेकिन चन्द अहम सवालात फिर भी बाक़ी हैं :

1. क्या नफ़ीरे—आम के हुक्म की अमली तत्बीक आज के हालात में भी मुमकिन है?
2. क्या हम उन हालात में भी कुफ़्रार के खिलाफ जिहाद करें जबकि मुसलमानों के पास कोई एक मुतफ़्क्रा अमीर या खलीफा नहीं है ?
3. क्या हम अफ़ग़ानिस्तान के क़िताल में शरीक हों हालांकि, मुजाहिदीन मुख़्तलिफ़ ग़िरोह और क़यादतों में बंटे हुए हैं ?
4. अगर सब लोग जिहाद छोड़ बैठें तो क्या एक मुसलमान तन्हा ही क़िताल करे ?
5. क्या हम ऐसे मुसलमानों के साथ भी मिलकर क़िताल करें जिनकी दीनी तर्बियत नाक़िस (अधूरी) है ?
6. क्या हमारे लिए कमज़ोरी के आलम में कुफ़्रार से मदद तलब करना जाइज है ?



## क्या नफीरे-आम के हुक्म की अमली तत्बीक आज के हालात में भी मुमकिन है ?

इस्लाम ने नफीरे-आम का जो हुक्म दिया है, यानी ये कि सब लोग जिहाद के लिए निकल आएँ, हत्ताकि बीवी शौहर से (महरम साथ होने की शर्त के साथ!) और बेटा वालिद से इजाज़त लिए बगैर ही निकल पड़ें, बाज लोगों के ख्याल में इस हुक्म पर अमल दरआमद तक़रीबन नामुमकिन है और उसकी वजूहात कुछ इस तरह गिनवाई जाती हैं कि:

1. अगर सब लोग ही जिहाद के लिए निकल आएँ तो कोई भी इस्लामी सरज़मीन ऐसी नहीं जहाँ मुसलमानों की कुल तादाद का दसवां हिस्सा भी समा सके।

2. अगर सब लोग जिहाद के लिए निकल पड़ें तो लोगों की दीनी तर्बियत का काम मुतास्सिर होगा, हालांकि यही तर्बियत उम्मत-मुस्लिमा को तबाही से बचाने की आखिरी उम्मीद है।

3. अगर हर शख्स फ़िलिस्तीन, अफ़ग़ानिस्तान और दीगर मक़बूज़ा सरज़मीनों का रूख़ कर ले तो पीछे मुसलमानों के अपने इलाकों में एक ख़ला पैदा हो जाएगा जिससे सेक्यूलर, क़ौमपरस्त, इश्तिराकी और बअसी अनासिर (बाहरी दुश्मन) फाएदा उठाएंगे।

**जवाब:** अगर मुसलमान नफीरे-आम से मुताअल्लिक अपने रब का हुक्म और अपनी शरिअत का फैसला महज़ एक हफ्ते के लिए नाफिज़ करें, सिर्फ़ एक हफ्ता उस पर पूरी तरह अमल करें तो फ़िलिस्तीन नजिस यहूदियों से पाक हो जाए। अगर ये पूरी की पूरी उम्मत जिहाद के लिए उठ खड़ी हो तो अफ़ग़ानिस्तान से काफ़िरों को निकाल बाहर करने के लिए भी बहुत ज़्यादा वक्त़ दरकार नहीं होगा और थोड़े से अर्से के लिए जिहाद पर निकल जाने से न तो मआशरे में किसी दाई की कमी होगी, न मुसलमान ख़्वातीन के निकलने से उनके घर ज़मीन पर आ पड़ेंगे।

लेकिन हमारा हाल ये है कि हम हर मर्तबा बैठे इन्तिज़ार करते हैं, तमाशा देखते हैं यहां तक कि कुफ़्फ़ार एक और इस्लामी सरज़मीन पर क़ाबिज़ हो जाते हैं। फिर जब क़ब्ज़ा हो चुकता है तो हम चीख़ दहाड़कर, खुतबे झाड़कर, आंसू बहाकर और आहें भर-भर के उसका सोग़ मनाते हैं। (अल्लाह गवाह है कि आज यही सब कुछ हो रहा है। मुसलमानों के पेशाब की धार में बह जाने वाले इज़राईल को वरना क्या चीज़ बचाए हुए है? यक़ीनन, यह हमारा "वहन" ही है। (मुतर्जिम))



**हमारे ज़हनों में क़ौमपरस्ताना तसव्वुरात रासिख (जमे हुए) हैं?**

अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि इस्लाम के बारे में सोचते हुए भी हमारे ज़हनों पर क़ौमपरस्ताना तसव्वुरात ग़ालिब आ जाते हैं और हमारी निगाहें वो मस्नूअी सरहदें पार नहीं कर पातीं जो मुआहिदा साएक्स पेकय् ने हमारे लिए खींची थी या जॉन अन्तोन नामी बर्तानवी या किसी और फ़्रांसिसी काफ़िर ने जिनका तअय्युन किया था। आख़िर क्या वजह है कि शाम की सरहद पर वाक़ेअ अदन के शहर “रमसा” में रहने वाला मुसलमान उरदुन ही के एक और शहर “उक़बा” में रहने वाले शख़्स से गहरी वाबस्तगी का अहसास रखता है और उसके बारे में ऐसे ही फ़िक्र करता है जैसे एक मुसलमान भाई की फ़िक्र होनी चाहिए, हालांकि “उक़बा” उससे छः सौ (600) मील के फासले पर है ? लेकिन यही मुसलमान सरहद पार शाम के इलाक़े “दरआ” में बसने वाले शख़्स के बारे में न ऐसे जज़बात रखता है, न उसकी फ़िक्र करता है, हालांकि “दरआ” (शाम) और उक़बा (उरदुन) दोनों के बाशिन्दे मुसलमान हैं, बल्कि हो सकता है कि “दरआ” में रहने वाला दूसरे शख़्स से ज़्यादा दीनदार और पाबन्दे-शरई हो? बिलाशुब्हा ये ख़य्ये हमारे ज़हनों में रासिख क़ौमपरस्ताना तसव्वुरात ही का नतीजा है।

(हिन्दुस्तान के जैसलमेर का एक मुसलमान सिन्ध, पाकिस्तान के अपने हमज़ात के लिये तो तड़पता है, मगर उसी पाकिस्तान के फाटा के मज़्लूम मुस्लिम के लिये नहीं तड़पता। बस, यही क़ौमपरस्ताना तसव्वुरात हैं। (मुतर्जिम))



**दूसरा सवाल**



**क्या हम उन हालात में भी कुफ़रार के खिलाफ जिहाद करें जबकि मुसलमानों का कोई एक मुतफ़िक्का (एक राय) अमीर या ख़लीफा नहीं है?**

जी हाँ, अमीर न हो तब भी जिहाद करना हमारी ज़िम्मेदारी बनती है ! ये बात तो किसी ने भी नहीं कही कि अगर मुसलमानों का एक मुतफ़िक्का अमीर न हो तो जिहाद की फ़र्जियत साक़ित हो जाती है। बल्कि इसके बरअक्स, हम देखते हैं कि सलीबी जंगों के दौरान और तातारियों के खिलाफ़ जिहाद में मुसलमानों के हर इलाक़े का अलग-अलग अमीर होता था, बल्कि बाज़ औक़ात एक इलाक़े में भी एक से ज़्यादा उमराअ् होते, मगर उसके बावजूद मुसलमानों ने उनके खिलाफ़ जिहाद किया। मसलन उस वक़्त “हल्ब” में अलग-अलग अमीर था, “दमिश्क़” में अलग-अलग और “मिसर” में तो एक से



ज्यादा उमरा थे, जिनमें से बाज़ तो मुसलमान उमराओं के खिलाफ भी सलीबियों से मदद तलब करते हुए नहीं शर्माते थे। जैसा कि “शावर” ने मिस्र के एक और अमीर “जरगाम” के खिलाफ सलीबियों से मदद हासिल की। लेकिन मुसलमानों ने उसमें से किसी बात को भी जिहाद से मुंह फेरने का उज्र नहीं बनाया।

आज तक किसी आलिम ने ये नहीं कहा कि ऐसे हालात में जिहाद की फर्जियत साकित हो जाती है और “मुसलमानों की सरज़मीन से कुफ़र को बाहर निकालना” फर्ज नहीं रहता। बल्कि हकीकत तो ये है कि ऐसे में जिहाद की फर्जियत पहले से भी कई गुनाह बढ़ जाती है।

उन्दलूस (स्पेन) में भी मुसलमानों की सूरते-हाल उससे बहुत मुख्तलिफ नहीं थी। जैसा कि एक शायर कहता है :

**वोह गिरोहों में बँट चुके थे**

**और हर मुहल्ले में एक नया अमीरूल्मोमिनीन और एक नया मींबर था।**

इसी तरह एक और शायर कहता है :

**जिस चीज़ ने सरज़मीने-उन्दलूस में मेरा दिल उचाट किया, वोह बादशाहों का अपने लिए मुअतमद और मुअतजद जैसे बुलन्द व बाला अलकाबात इखितयार करना था, ऐसे अलकाबात जिनके वो सिरे से मुस्तहिक ही न थे।”**

बिल्कुल उस बिल्ली की तरह जो मुंह फुलाकर, पंजों के बल खड़ी होकर खुद को शेर जाहिर करना चाहे। लेकिन इस इन्तिशार के बावजूद उलमा में से किसी ने नहीं कहा कि उन हालात में कोई जिहाद नहीं होता, बल्कि हम देखते हैं कि उन्दलूस में तो उलमा खुद पहली सफ़ों में लड़ते थे।

ये भी मुमकिन है कि किसी मअरके में अमीर की तरफ से मुतय्यनकर्दा कोई क्राएदा न हो, जैसाकि ग़ज़्वाए मौता के मौके पर हुआ। चुनांचे रसूलुल्लाह (ﷺ) की तरफ से मुतय्यनकर्दा तीनों काईदीन की शहादत के बाद, हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ि. उठे और उन्होंने अलम संभाल लिया, हालांकि उन्हें रसूलुल्लाह (ﷺ) की तरफ से मुतय्यन नहीं किया गया था, और अल्लाह ने उन्हीं रज़ि. के हाथों मुसलमानों के लश्कर को बचा निकाला। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने न सिर्फ आप रज़ि. के इस फेअल को दुरूस्त करार दिया बल्कि आप रज़ि. की तारीफ़ भी फर्माई।



**खुद खिलाफत के क़याम का असल रास्ता भी जिहाद है।**

इसी तरह ये भी मुमकिन है कि किसी इमाम या अमीरुलमोमिनीन का वुजूद ही न हो, लेकिन न तो उससे क़िताल की फ़र्जियत पर कोई असर पड़ता है, ना ही “मुसलमानों की सरज़मीनों से कुफ़्र को निकालने” का फ़र्ज साक़ित होता है।

“हमारा ये काम नहीं कि हम बैठकर “विलायते-कुबरा” के क़ायम होने और खिलाफ़त के लौटने का इंतज़ार करें, क्योंकि इस्लामी खिलाफ़त अमली दुनिया से कोसों दूर बैठकर उलूमी-फ़ुनून पर उबूर (महारत) हासिल करने और बहुत कुछ पढ़ लेने से क़ायम नहीं होती बल्कि इसके क़याम का तो असल रास्ता जिहाद है, जिसके ज़रिए “विलायते-खासा” यानी क़िताल की ईमारत, “विलायते-आम्मा” यानी खिलाफ़त में तबदील हो जाती है।”

**अगर किसी वक़््त मुसलमानों का कोई ख़लीफ़ा या अमीरुल-मोमिनीन न हो, तो मुजाहिदीन क्या करें ?**

अगर किसी वक़््त मुसलमानों का कोई ख़लीफ़ा या अमीरुलमोमिनीन न हो, तो मुजाहिदीन खुद अपने में से किसी एक शख़्स को अपना अमीर चुन लेंगे। वही उनके मुआमलात को मुनज़म करेगा, उनकी शिराज़ाबन्दी करेगा और उनके दर्मियान आपसी तआवुन का ज़रिया बनेगा।

एक सहीह हदीस में सहाबी-ए-रसूल (ﷺ) हज़रत उक़््बा बिन आमिर रज़ि. से रिवायत है, आप रज़ि. फ़र्माते हैं :

“रसूलुल्लाह (ﷺ) ने एक सरिया रवाना फ़र्माया। बस मैंने (सरिये में शरीक) एक शख़्स को तलवार से मुसल्लाह किया। फिर आप रज़ि. फ़र्माते हैं कि जब वोह शख़्स वापस आया तो उसने (मुझे सरिये की रूदाद सुनाते हुए) कहा मैंने रसूलुल्लाह (ﷺ) को कभी किसी को यूं मलामत करते नहीं देखा जैसे उन्होंने हमें मलामत की है। आप (ﷺ) ने फ़र्माया : क्या तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जब मैं किसी शख़्स को (अमीर बनाकर) भेजूं और वोह मेरे हुक्म के मुताबिक़ न चले तो तुम उसकी जगह किसी ऐसे शख़्स को (अमीर) बना लो जो मेरे हुक्म के मुताबिक़ चले।”

(रवाहु-अबूदाऊद व अहमदो-हाकिम व उनज़र फतहुलरब्बानी-45/41)  
(सरिया-जिसमें रसूलुल्लाह (ﷺ) बज़ाते-खुद शरीक न हों, उसे सरिया कहते हैं।)

इस वाक़िए में रसूलुल्लाह (ﷺ) ने सहाबा रज़ि. को इस बात पर उभारा कि अगर ज़रूरत पड़े तो ऐसे अमीरे-लश्कर को भी बदल डालें जिसे आप (ﷺ) अपने मुबारक हाथों से अलम थमा चुके हों, और उसकी जगह पर नया अमीर मुक़रर कर लें। तो जहां सिरे से ही कोई अमीर न हो, क्या वहां अमीरे-जिहाद मुक़रर करने की ज़रूरत शदीदतर नहीं हो जाती?



# इमाम की अदम मौजूदगी (गैरमौजूदगी) की वजह से जिहाद मुअख़्खर नहीं किया जाएगा !

इमाम इब्ने-कुदामा रह. "अल्मुगनी" में फर्माते हैं :

‘बस इमाम की अदम-मौजूदगी की वजह से जिहाद मुअख़्खर (स्थगित) नहीं होगा, क्योंकि ताख़ीर करने से जिहाद की मस्लिहत ही फौत हो जाती है।’

(अल्मुगनी 253/8)

और जब लोग किसी को अपना अमीर चुन लें तो उसकी इताअत करना वाजिब हो जाता है। फतहुल उला अल-मालिक में लिखा है :

“शैख मयारा रह. नक़ल करते हैं कि जब कोई अमीर न हो और लोग किसी नुमायां शख़्सियत पर मुत्तफ़िक़ हो जाएं (और उसे अपना अमीर बना लें), ताकि वोह उनके मामलात संवारे और उनके ताक़तवर लोगों को कमज़ोरों पर ज़्यादती न करने दे, और वोह शख़्स इस काम में अपनी सारी सई व कुव्वत भी लगा रहा हो, तो उसके खिलाफ उठ खड़े होना जाइज़ नहीं है। यक़ीनन ऐसी हरकत करने वाला इस्लाम की वहदत तोड़ना चाहता है और मुसलमानों के दर्मियान तफ़रीक़ पैदा करने का इरादा रखता है। चुनांचे सहीह मुस्लिम की हदीस है :

“अनक़रीब बहुत फितना व फसाद होगा, बस जो शख़्स इस उम्मत के मुत्तहिद होने के बाद उसकी वहदत को फाड़ना चाहे, उसको तलवार से मार डालो, चाहे वोह कोई भी हो।” (सहीह मुस्लिम, किताबुल-इमारह)



क्या हम अफ़ग़ानिस्तान के क़िताल में शरीक हों, हालांकि मुजाहिदीन मुख्तलिफ़ ग़िरोहों और क़यादतों में बंटे हुए हैं ?

मुजाहिदीन के मुख्तलिफ़ ग़िरोहों और क़यादतों में बंटे होने के बावजूद अफ़ग़ानिस्तान में क़िताल करना हर मुसलमान पर फ़र्ज़ है, क्योंकि हमलावर मुलहिदों के खिलाफ़ मुसलमानों के दिफ़ाअ का वाहिद ज़रिया क़िताल ही है और ऐसी कोई दलील मौजूद नहीं जो मुलहिद काफ़िरों के खिलाफ़ इस सूरत में लड़ने से मना करती हो जब मुसलमान ज़रूरत से ज़ाइद इस्लामी मज़मूआत और तन्जीमात में बंटे हुए हों। अगर मुजाहिदीन के क़ाईदीन एक से ज़्यादा हों तब भी क़िताल फ़र्ज़ रहेगा और हर क़ाइद को अपने-अपने मजमूअे का अमीरे-क़िताल तसव्वुर किया जाएगा।

### ❖ चौथा सवाल ❖

अगर सब लोग जिहाद छोड़ बैठें तो क्या एक मुसलमान तन्हा ही क़िताल करे ?

जी हाँ, मुसलमान की ज़िम्मेदारी तो यही बनती है कि उसे तन्हा भी क़िताल करना पड़े तो करे, क्योंकि अल्लाह अज़्जवजल अपने नबी (ﷺ) को मुख़ातिब करते हुए फ़र्माते हैं:

فَقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا تُكَلَّفُ إِلَّا نَفْسُكَ وَحَرْضُ الْمُؤْمِنِينَ عَسَى اللَّهُ أَنْ يَكُفَّ بَأْسَ الَّذِينَ كَفَرُوا وَاللَّهُ أَشَدُّ بَأْسًا وَأَشَدُّ تَنكِيلًا (84)

“बस तुम जंग करो अल्लाह की राह में, तुम अपनी ज़ात के सिवा किसी के ज़िम्मेदार नहीं, अल्बत्ता मोमिनों को लड़ाई पर उभारो। अल्लाह से उम्मीद है कि वोह काफ़िरों के ज़ोर को तोड़ देगा और अल्लाह सबसे ज़्यादा ज़ोर वाला और सबसे सख़्त सज़ा देने वाला है।” (सूर : निसा 84)

ये आयाते-मुबारक, नबी-ए-अकरम (ﷺ) और आप (ﷺ) के हर उम्माती को दो बातों का हुक्म देती हैं :



1. क़िताल-फ़ी-सबीलिल्लाह का, चाहे तन्हा ही करना पड़े ।

2. मोमिनों को क़िताल पर उभारने का ।

और ये दोनों ही काम फ़र्ज़ हैं, क्योंकि जब किसी काम का हुक्म दिया जाए तो उससे यही मुराद होती है कि उसे पूरा करना फ़र्ज़ है ।

नीज़ अल्लाह रब्बुलइज़्ज़त ने इस आयते-मुबारका में क़िताल की हिक्मत भी बयान फरमा दी है, यानी “कुफ़्फ़ार का ज़ोर तोड़ना”, क्योंकि कुफ़्फ़ार तभी हमारे वुजूद से ख़ौफ़जदा होंगे जब हम उनके खिलाफ़ क़िताल करते रहेंगे ।

وَقَاتِلُوهُمْ حَتَّى لَا تَكُونَ فِتْنَةٌ وَيَكُونَ الدِّينُ كُلُّهُ لِلَّهِ (39)

“और उनसे जंग करो यहां तक कि फितना बाक़ी न रहे और दीन सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए ख़ालिस हो जाए ।” (सूर : अन्फाल, 39)

लिहाज़ा क़िताल तर्क करने से फितना यानी शिर्क फैल जाता है और कुफ़्फ़ार ग़ालिब आ जाते हैं ।

सहाबा रिज़्वानुल्लाह अलैहि अज़मईन ने सूर: निसा की मन्दर्जा-बाला आयत को इन्हीं ज़ाहिरी मअनों में समझा था । अबू इस्हाक़ रह. फर्माते हैं कि मैंने हज़रत बराअ् बिन आजिब रज़ि. से पूछा : अगर एक शख्स तन्हा ही मुश्रिकों पर कूद पड़े तो क्या उसका ये फेअल अपने आपको खुद ही हलाक़त में डालने के मुतरादिफ़ है ? हज़रत बराअ् रज़ि. फर्माते हैं : नहीं (ऐसा नहीं है), क्योंकि अल्लाह ने अपने रसूल(ﷺ) को भेजा और फर्माया : (बस तुम जंग करो अल्लाह की राह में, तुम अपनी ज़ात के सिवा किसी के ज़िम्मेदार नहीं) “अपने आपको हलाक़त में डालने” वाली आयत तो (फ़ी सबीलिल्लाह) खर्च करने से मुताअल्लिक़ है ।”

(कुआन की यह आयत व हज़रत बराअ् बिन आजिब रज़ि. का सरीह जवाब इस्लाम में “खुदकुश हमलों” के जायज़ होने का खुला सुबूत है ।) हज़रत बराअ् रज़ि. ने अपने जवाब के आख़िर में सूर: बक़रह की इस आयत की तरफ़ इशारा फर्माया है,

“अल्लाह की राह में खर्च करो और अपने हाथों अपने आपको हलाक़त में न डालो ।”

चुनांचे दुश्मन के खिलाफ़ तन्हा ही क़िताल करना हलाक़त नहीं, बल्कि अल्लाह की राह में (जान व माल) खर्च करने से हाथ खींच लेना हलाक़त है। इमाम इब्नुलअरब रह. “अहकामुल कुआन” में फर्माते हैं : “ऐसे हालात भी पैदा हो सकते हैं जब नफ़ीरे-आम (यानी हर एक का निकलना) फ़र्ज़ हो जाए। लिहाज़ा दुश्मन जब मुसलमानों की किसी सरज़मीन पर हमलावर हो या उनके किसी इलाक़े को घेर ले तो जिहाद तअय्युन (तरतीब) के



साथ हर एक पर फर्ज हो जाता है और तमाम लोगों के लिए जिहाद करना और उसकी खातिर घरों से निकलना लाज़िम हो जाता है। ऐसे में अगर अदाएंगी—ए—फर्ज में कौताही करें तो गुनाहगार होंगे।”

बस अगर नफ़ीरे—आम का हुक्म इस वजह से हो कि दुश्मन हमारे किसी इलाक़े पर कब्ज़ा कर लें या मुसलमानों को पकड़ कर कैदी बना लें तो सब लोगों पर फर्ज हो जाता है कि वोह जिहाद के लिए निकलें और हर हाल में निकलें, ख़्वाह हल्के हों या बोझिल, सवार हों या पैदल, गुलाम हों या आज़ाद ... जिसके वालिद ज़िन्दा हों वो उनकी इजाज़त के बग़ैर निकले और जिसके वालिद फौत हो चुके हों वोह भी निकलें, (और जिहाद करता रहे) यहां तक कि अल्लाह का दीन ग़ालिब आ जाए, मुसलमानों की सरज़मीन से दुश्मन का शर दूर हो जाए, इस्लामी सरहदें महफूज़ हो जाएं, दुश्मन रूस्वा हो जाए, सारे मुसलमान कैदी आज़ाद हो जाएं ... और इस बारे में उलमा के दर्मियान कोई इख़ितलाफ नहीं पाया जाता। लेकिन (सवाल ये है कि) अगर सब लोग ही जिहाद छोड़ कर बैठे रहें तो अकेला बन्दा क्या करे ? उसे चाहिए कि वोह कोई कैदी तलाश करे और पैसे देकर उसे आज़ाद कराए, और अगर कुदरत रखता हो तो अकेला ही क़िताल करे और अगर उसकी कुदरत भी न रखता हो तो किसी और मुजाहिद को तैयार करे और उसे सामान फराहम करे।”

(अहकामुल—कुआन 154/2)

**तन्हा क़िताल करना अल्लाह रब्बुल—इज़्जत को बहुत खुश करता है !**

हकीकत तो ये है कि किसी शख्स का तन्हा क़िताल करना अल्लाह रब्बुल—इज़्जत को बहुत खुश करता है। इमाम अहमद रह. और इमाम अबूदाउद रह. ये हसन हदीस रिवायत करते हैं :

“हमारा इज़्जत व जलाल वाला रब उस बन्दे से खुश हो जाता है जो अल्लाह के रास्ते में लड़े, फिर जब वो पस्पा हो (कर भाग) जाए, यानी उसके साथी, तो उसे समझ आ जाए कि (फरार, हराम होने की वजह से) उस पर क्या ज़िम्मेदारी बनती है और वोह वापस लौट आए और (लड़ता रहे) यहां तक कि उसका खून बहा दिया जाए तो (ऐसे मुजाहिद के लिए) अल्लाह तआला अपने फरिश्तों से फर्माते हैं: ‘देखो, मेरे इस बन्दे को! ये उस (जज़ा) की रज़्बत में जो मेरे पास है और उस (अज़ाब) के खौफ से जो मेरे पास है, वापस लौट आया यहां तक कि उसका खून बहा दिया गया।”



## पांचवा सवाल

क्या हम ऐसे मुसलमानों के साथ भी मिलकर क़िताल करें जिनकी दीनी तर्बियत नाक़िस (अधूरी) है?

कई लोग, जिनमें बाज़ मुखलिसीन भी शामिल हैं, ये सवाल पूछते हैं कि हम अहले-अफ़ग़ानिस्तान के साथ मिलकर कैसे जिहाद करें, जबकि उनमें सच्चे झूठे, हर किस्म के लोग मौजूद हैं, सिरगेट और नस्वार(तम्बाकू) का इस्तेमाल उनके यहां आम है, उनमें से बाज़ तो अपना अस्लाह बेचकर भी पैसा कमाने से गुरेज़ नहीं करते। इसी तरह बाज़ लोगों को ये ऐतराज़ है कि अहले-अफ़ग़ानिस्तान की अक्सरियत मज़हबे-हनफ़ी के अलावा किसी मज़हब को बर्दाश्त नहीं करती और उनमें बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो तावीज़ वग़ैरह बान्धते हैं। मैं उन चीज़ों का शर्ई हुक्म बयान करने से पहले एक सवाल पूछना चाहूंगा: मुझे पूरी दुनिया में कोई एक जगह ऐसी दिखा दें जहां बसने वाले मुसलमानों में इस तरह के मसाइल न पाए जाते हों? तो क्या हम इन मसाइल की वजह से जिहाद से हाथ खींच लें और कुफ़्रार को खुला छोड़ दें कि वोह मुसलमानों की जिस सरज़मीन पर चाहे काबिज़ हो जाएं? जहां चाहे घूमें?

जहां तक जवाब का ताअल्लुक है तो बिलाशुब्हा ऐसे लोगों के साथ मिलकर क़िताल करना भी फ़र्ज़ है जिनकी दीनी तर्बियत नाक़िस हो, क्योंकि क़िताल का हुक्म दफ़उआज़मुल ज़ररीन के फ़िक्ही क़ायदे पर बनी है, जिसमें ये उसूल है कि जब दो ज़रूरी ज़रर सामने(नुक़सानदायक चीज़ें) हों, तो उनमें से ज़्यादा बड़े ज़रर (नुक़सान, ख़तरे) को दूर करना तर्जीह करार पाएगा।

ज़ररे-आम को दूर करने के लिए ज़ररे-खास बर्दाश्त कर लिया जाएगा। शदीदतर ज़रर को कमतर ज़रर से ज़ाइल(ख़त्म)किया जाएगा।

(अलमअदाह, रक़म-26)

“जब दो मफ़ासिद का सामान हो तो उसमें से कमतर को इख़्तियार करके ज़्यादा नुक़सानदेह मफ़सदे से बचा जाएगा।”

“जब दो में से एक ख़राबी को इख़्तियार करना नागुज़ीर हो तो कमतर ख़राबी को इख़्तियार कर लिया जाएगा।”

चुनांचे इस मआमले में भी कमतर ख़राबी को इख़्तियार करना लाज़िम है। अब खुद ही फैसला कर लीजिए कि ज़्यादा बड़ी कामयाबी कौनसी है? कुफ़्रार का अफ़ग़ानिस्तान पर काबिज़ होना और उसे एक काफ़िर मुल्क बनाकर वहां कुआन और इस्लाम को मम्नूअ(निषिद्ध) करार देना, या फिर एक ऐसी क़ौम के साथ मिलकर जिहाद करना जिसमें बाज़ कमजोरियां या गुनाह पाए जाते हों?



# किताल हर नेक और फ़ाजिर मुसलमान के साथ मिलकर किया जाएगा !

इमाम इब्ने-तैमिया रह. मजमूउलफ़तावा में फ़र्माते हैं : “लिहाज़ा अहले-सुन्नत-वल-जमाअत के उसूलों में ये बात शामिल है कि किताल हर नेक और फ़ाजिर (यानी बद अमल मुसलमान) के साथ मिलकर किया जाएगा, क्योंकि रसूलुल्लाह(ﷺ) का फ़र्मान है,

यक़ीनन अल्लाह किसी फ़ाजिर बन्दे से भी इस दीन को तक्कीयत पहुंचा देते हैं ।’ (बुखारी, किताबुल-जिहाद)

और यह भी कि : “यक़ीनन अल्लाह तबारक व तआला इस दीन को ऐसी क़ौमों से भी तक्कीयत पहुंचाएंगे जिनका भलाई में कोई हिस्सा नहीं होगा ।” (मुसनद अहमद)

बस जब किताल सिर्फ़ फ़ाजिर उमरा या फ़ाजिर लश्कर के साथ मिलकर ही करना मुमकिन हो तो हमारे लिये दो ही रास्ते बाक़ी बचते हैं : या तो उनके साथ किताल में शरीक न हुआ जाए, मगर ऐसा करने से वोह (कुफ़्फ़ार) ग़ालिब आ जाएंगे जो हमारे दीन व दुनिया, दोनों के लिए उन (फ़ाजिर मुसलमानों) से कहीं ज़्यादा नुक़सानदेह हैं। या फिर फ़ाजिर अमीर (या फ़ाजिर लश्कर) के साथ मिलकर किताल किया जाए और ऐसा करने से ज़्यादा बड़े फुज़्ज़ार (यानी कुफ़्फ़ार) को पछाड़ा जा सकेगा और अगर सब नहीं, तो बेशतर इस्लामी शआइर भी क़ायम हो सकेंगे। लिहाज़ा ऐसी सूरत में या इससे मिलती जुलती दीगर सूरतों में ये दूसरी राह इख़्तियार करना ही फ़र्ज़ है। बल्कि हक़ीक़त तो ये है कि खुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ि. के अदवार में भी बहुत सी जंगें इसी तरह लड़ी गईं।

(यानी इस्लाम में नए-नए दाख़िल होने वाले लोग गिरोह दर गिरोह बग़ैर किसी लम्बी चौड़ी तालीम व तर्बियत के जिहाद में कूद पड़े और सहाबा रज़ि. ने उनके साथ मिलकर ही जिहाद किया। (मुतर्जिम))

“घोड़े की पेशानी में भलाई रख दी गई है जो क़यामत तक उसके साथ रहेगी, (ये भलाई है जिहाद की) अज़्र और माले-ग़नीमत ।”

(बुखारी, किताबुल-जिहाद)

बस, जब तक अफ़ग़ानिस्तान में बसने वाले लोग मुसलमान हैं उनके साथ मिलकर किताल करना फ़र्ज़ है। अफ़ग़ानिस्तान में बुलन्द किया जाने वाला अलमे-जिहाद इस्लामी है और वहां बरसरे-पेकार मुजाहिदीन का ऐलान कर्दा हदफ़ भी, “जमीन पर अल्लाह के दीन का क़याम” है, लिहाज़ा आज जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान से मुंह फ़ैरने का कोई उज़्र नहीं है।



शरिअत के इसी हुक्म पर अमल न करने का नुकसान हम फ़िलिस्तीन में उठा रहे हैं। अगर इब्तिदाई दौर की तमाम ख़राबियों के बावजूद, मुसलमान फ़िलिस्तीन में जिहाद करते तो ये कभी भी हमारे हाथों से न निकलता। पर उम्मत-मुस्लिमा उस वक्त हरकत में नहीं आई और देखते ही देखते हालात बहुत बिगड़ गए और जॉर्ज बुश, नायफ़ हवात्मा और फादर कैपीसी (यहूदो-नसारा की बॉडी) के आने के बाद रही सही कसर भी निकल गई। जहां तक अफ़ग़ान मुजाहिदीन की क़यादत का ताअल्लुक है, तो वोह सबके सब नमाज़ पढ़ते हैं, रोज़े रखते हैं, दीनी शआइर कायम करते हैं और अपने आपको इस्लाम ही से मंसूब करते हैं। अगर मुसलमानों का कोई भी गिरोह कुफ़ार, अहले-किताब या मुलहिदों के खिलाफ़ लड़ रहा हो तो जब तक वोह (मुजाहिदीन) मुसलमान रहें, उनके साथ मिलकर क़िताल करना फर्ज़ है, ख़वाह वह कितने ही फ़ासिक व फ़ाजिर क्यों न हों। इमाम शौकानी रह. नेलुलऔतार में फ़र्माते हैं :

इस बात पर उलमा का इजमाअ है कि काफ़िरों के खिलाफ़ फ़ासिकों से मदद लेना जाइज़ है। (नेलुलऔतार-44/8)



छठा सवाल



**क्या कमज़ोरी के आलम में हमारे लिए कुफ़ार से मदद तलब करना जाइज़ है ?**

बाज़ लोगों की राय है कि जिहादे-अफ़ग़ानिस्तान के लिए अमरीका और मरिबी मुमालिक से मदद तलब करनी चाहिए। इसी तरह बाज़ दीगर लोगों का ख़याल है कि फिलिस्तीन में यहूद के खिलाफ़ जिहाद के लिए रूस से मदद मांगनी चाहिए। (मालूम हो कि यह फ़तवा रूसी अफ़वाज़ के काबुल पर कब्ज़े व मुजाहिदीन की मज़ाहिमत (प्रतिरोध) के शुरूआती दौर का है। उस वक्त रूस व अमेरिका में कोल्ड वार भी चल रहा था, मगर आज के हालात में सिर्फ़ दुश्मन का नाम व चेहरा बदल गया है मगर ज़मीनी हक़ीक़त पहले से भी बदतर हो चुके हैं। हाँ, मुजाहिदीन के सरो पर रूस को मार भगाने के तमग-ए-इम्तियाज़ जुड़ चुके हैं, जो उनको अपने पुराने तर्जुबात की रोशनी में अमेरिका से जिहाद करने में मददगार साबित हो रहे हैं। (मुतर्जिम))

मैं ये बात बिल्कुल वज़ाहत से कहना चाहूंगा कि कुफ़ार से यूं मदद तलब करना, तमाम फुक़हा के नज़दीक़ हराम है और ऐसा करने का नतीजा यही होता है कि तमामतर कुर्बानियों के बावजूद जिहाद अपने हतमी हदफ तक नहीं पहुंच पाता।

कुफ़ार से मदद तलब करने के बारे में कई अहादीस वारिद हुई हैं जो बज़ाहिर आपस में (बाहर) टकराती हुई महसूस होती हैं। वोह अहादीस जो मदद तलब करने से मना करती हैं, उनमें दर्जे-ज़ेल रिवायत भी शामिल हैं :



1. सहीह मुस्लिम में रिवायत है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने बद्र के दिन एक मुशरिक से फ़र्माया :

“वापस लौट जाओ, क्योंकि मैं किसी मुशरिक से हरगिज़ मदद नहीं लेता।”

(मुस्लिम, किताबुल जिहाद, नेलुलऔतार-128/7)

एक और हदीसे—मुबारका में यह अल्फ़ाज गिलते हैं, हम मुशरिकों के खिलाफ़ मुशरिकों से मदद नहीं तलब करते। (मुसनद अहमद, तबरानी)

जबकि इसके बरअक्स ये वाक़िया भी सहीह हदीस में मर्वी है कि सफ़वान बिन उमय्या मुशरिक होते हुए रसूलुल्लाह (ﷺ) के साथ ग़ज़्वे में शरीक हुआ। इमाम नौवी रह. तहज़ीबुल असमा में फ़र्माते हैं :

“सफ़वान बिन उमय्या काफ़िर होते हुए नबी (ﷺ) के साथ ग़ज़वा-ए-हुनैन में शरीक हुआ।” (तहज़ीबुल असमा वललुगात-263)

नीज़, रसूलुल्लाह (ﷺ) ने हुनैन के दिन सफ़वान बिन उमय्या से ज़िरहें भी उधार लीं और उससे फ़र्माया : “(ये चीज़ें) उधार हैं (और तुम्हें) वापस कर दी जाएंगी।”

(हदीस सही, रवाहुल हाकिम, सहीहुल-जामेअ-3967)

और अहले-सैर के नज़दीक ये वाक़िया भी साबित है कि उहद के दिन रसूलुल्लाह (ﷺ) के साथ कज़मान नामी शख़्स भी ग़ज़्वे में शरीक हुआ और उसने मुशरिकों के तीन अलमबर्दारों को क़त्ल किया। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने क़ज़मान के बारे में फ़र्माया :

“बेशक अल्लाह इस दीन की मदद फ़ाजिर शख़्स से भी करवा लेता है।”

अहादीस के इस ज़ाहिरी तआरूज़ की वजह से इस मसले के बाज़ पहलुओं में अहले-इल्म का इख़्तिलाफ़ है। तमाम अहादीस को जमा करते हुए उलमा-ए-किराम मुख्तलिफ़ आराअ् (रायों) तक पहुंचे हैं, जिनमें से एक राय ये है कि :

“इब्तिदा में मुशरिकीन से मदद तलब करना कुल्लियतन मना था, मगर बाद में कुछ रूख़सत दे दी गई। “अलतलख़ीस” में हाफ़िज़ रह. कहते हैं : इमाम शाफ़ई रह. ने इस राय की तसदीक की है और उस पर आपका वाज़ेह क़ौल भी मौजूद है।” (नेलुलऔतार-44/8)

अलबत्ता इस बात पर तो चारों फ़क़हा का इत्तिफ़ाक़ है अगर दर्ज ज़ैल (नीचे लिखी) शराइत पूरी हो रही हों तो कुफ़्रार से मदद लेना जाइज़ है:

1. इस्लाम का हुक्म ही ग़ालिब हो, यानी मुसलमान इतने ताक़तवर हों कि अगर वोह मुशरिक जिनसे मदद तलब की जा रही है और वोह जिनके खिलाफ़ मुसलमान क़िताल कर रहे हैं, दोनों इकट्ठे हो जाएं, तब भी मुसलमान उन सब पर ग़ालिब आ जाएं।

2. जिन काफ़िरो से मदद तलब की जा रही हो वोह मुसलमानों के बारे में अच्छी सोच रखते हों और मुसलमानों को उनसे ख़यानत का खदशा (अन्देशा) न हो। ये बात उनके अमली सुलूक और मामलात में बआसानी पता चल सकती है।

3. जिस काफ़िर या जिन कुफ़्रार से मदद तलब की जा रही है, मुसलमान उनकी मदद के वाक़िअतन मुहताज हों।



# मसला, जेरे-बहस में मज़ाहिबे-अरबाअ की आराअ

(चारों इमामों की राय)

## (अ) हनफ़िया की राय –

इमाम मुहम्मद बिन हसन शहबानी रह. फ़र्माते हैं:

“अगर इस्लाम का हुक्म ही ग़ालिब हो, तो इस बात में कोई हर्ज नहीं कि मुसलमान अहले-शिरक के खिलाफ़ अहले-शिरक से मदद तलब करें।”

(शरह, किताबुल सीरत : 152)

इमाम जसास रह. फ़र्माते हैं :

“हमारे अस्हाब (यानी अहनाफ़) की राय ये है कि : मुश्रिकीन के खिलाफ़ क़िताल में दीगर मुश्रिकीन से मदद ले लेना जाइज़ है, बशर्ते कि जब फ़तह हासिल हो तो इस्लाम का हुक्म ही ग़ालिब आए।” (अहकामुल-कुर्आनिलिल-जसास)

## (ब) मालिकिया की राय –

इब्नेक़ासिम रह. फ़र्माते हैं :

“मेरी राय में कुफ़्रार से यूं मदद लेना कि वोह मुसलमानों के साथ मिलकर लड़ें, दुरुस्त नहीं, अलबत्ता अगर वोह बतौर मल्लाह या ख़ादिम साथ हों तो कोई हर्ज नहीं।” (अल मुदव्वनह अल कुबरा-40/2)

इसी तरह इमाम मालिक रह. फ़र्माते हैं :

“मेरी राय में मुश्रिकीन के खिलाफ़ मुश्रिकीन से मदद लेना जाइज़ नहीं सिवाए इस सूरत में जब बतौर ख़ादिम काम करें।” (अबकुर्तबी-100/8)

## (स) शाफ़िया की राय –

इमाम रमली रह. फ़र्माते हैं :

“इमाम या उसके नाइब के लिए कुफ़्रार, हत्ताकि अहले-हरब से भी मदद लेना जाइज़ है, मसलन (इस सूरत में) जब ये मालूम हो कि (जिन) कुफ़्रार (मदद तलब की जा रही है वोह) हमारे बारे में अच्छी सोच रखते हैं। मगर ये मदद तलब करना तभी जाइज़ होगा जब हमें वाकिअतन इस बात की ज़रूरत हो कि दुश्मन के खिलाफ़ लड़ाई में या बतौर ख़ादिम कोई हमारी मदद करे।”

(नहयातुल मुहताज़-58/8, वतकमिलतलु-मजमुआ-28/19)

## (द) हनाबिला की राय –

इमाम इब्ने-कुदामा रह. फ़र्माते हैं :

“इमाम अहमद से ऐसे अक़ाल मन्कूल हैं जो मुश्रिकीन से मदद लेने के जवाज़ पर दलालत करते हैं। बल्कि इमाम अहमद रह. के बारे में तो ये भी रिवायत किया गया है कि जम्हूर उलमा की राय के बरख़िलाफ़, आप रह. मुसलमानों के इमाम के साथ जंग में शरीक होने वाले काफ़िर को माले-ग़नीमत में सै हिस्सा देने के भी क़ाइल थे।” (अल-मुग़्री-414/8)



## कुफ़ार से मुआहिदात (समझौते)

मराहिले-जिहाद की तर्तीब को समझना बेहद ज़रूरी है।

कुफ़ार से सुलह के जवाज़ पर क़लम उठाते हुए बहुत से मुसन्नफ़ीन ठोकर खाते हैं और नुजूल-अहकाम के तारीखी मराहिल जाने बग़ैर ही कुआनी आयात से इस्तदलाल करना शुरू कर देते हैं। हमारे लिए इस तर्तीब को जानना नागुज़ीर (ज़रूरी) है, जिसके मुताबिक़ जिहाद से मुताअल्लिक़ कुआनी अहकामात बतदरीज नाज़िल होते रहे, यहाँ तक कि अल्लाह तआला ने सूर: तौबा की, “आयते-सैफ़” नाज़िल फ़र्माई :

وَقَاتِلُوا الْمُشْرِكِينَ كَافَّةً كَمَا يُقَاتِلُونَكُمْ كَافَّةً وَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ مَعَ الْمُتَّقِينَ (36)

“और उन सब मुश्रिकीन से लड़ो, जैसे कि वोह सब तुमसे लड़ते हैं और ये जान रखो कि अल्लाह तआला मुत्तकियों का साथी है।” (सूर: तौबा 36)

فَإِذَا انْسَلَخَ الْأَشْهُرُ الْحُرُمُ فَاقْتُلُوا الْمُشْرِكِينَ حَيْثُ وَجَدْتُمُوهُمْ  
وَخُذُوهُمْ وَاحْصُرُوهُمْ وَاقْعُدُوا لَهُمْ كُلَّ مَرْصَدٍ (5)

“बस जहाँ कही मुश्रिकों को पाओ उन्हें क़त्ल करो, उन्हें पकड़ो, उनका मुहासरा (घेराव) करो और उनके लिए हर घात में तैयार बैठो।” (सूर: तौबा: 5)

कुफ़ार से क़िताल का हुक्म मुतलक़न दिया जा चुका है।

इमाम इब्ने-क़य्यिम (मराहिले-जिहाद के बारे में) “ज़ादुलमआद” में वाज़ेह तौर पर लिखते हैं :

पहला मरहला- मक्का-मुकर्रमा में जिहाद हराम था।

दूसरा मरहला- हिजरत के मौक़े पर इसकी इजाज़त दी गई।

तीसरा मरहला- फिर उसके बाद जिहाद का हुक्म दिया गया, मगर सिर्फ़ उनके खिलाफ़ जो खुद जंग का आगाज करें।

चौथा और आख़िरी मरहला- और बिलआख़िर तमाम के तमाम मुश्रिकीन के खिलाफ़ जिहाद का हुक्म दे दिया गया।

इमाम इब्ने-आबेदीन हनफ़ी रह. फ़र्माते हैं :



“जान लो कि क़िताल के अहकामात तर्तीब से नाज़िल हुए। चुनांचे, इब्तिदा में रसूलुल्लाह (ﷺ) को तब्लीग़ करने और मुशिरकीन से एअराज़ बरतने का हुक्म था। अल्लाह तआला फ़र्माते हैं :

فَاَصْدَعْ بِمَا تُؤْمَرُ وَاَعْرِضْ عَنِ الْمُشْرِكِينَ (94)

“बस आपको जिस बात का हुक्म दिया जा रहा है वोह साफ़-साफ़ सुना दीजिए और उन मुशिरकीन से मुंह फेर लीजिए।” (सूर : हिज़र 94)  
फिर आप (ﷺ) को बेहतरीन तरीक़े से बहस करने का हुक्म दिया गया :

ادْعُ إِلَى سَبِيلِ رَبِّكَ بِالْحُكْمَةِ وَالْمَوْعِظَةِ الْحَسَنَةِ  
وَجَادِلْهُمْ بِالَّتِي هِيَ أَحْسَنُ (125)

“आप अपने रब की राह की तरफ़ दावत दीजिए हिक्मत से और अच्छी नसीहत से और उनके साथ बहस कीजिए उस तरीक़े से जो बेहतरीन हो।”  
(सूर : नहल 125)

फिर मुसलमानों को क़िताल की इजाज़त दी गई :

أُذِنَ لِلَّذِينَ يُقَاتِلُونَ بِأَنَّهُمْ ظَلِمُوا وَإِنَّ اللَّهَ عَلَىٰ نَصْرِهِمْ لَقَدِيرٌ (39)

“जिन (मुसलमानों) से (क्राफिर) जंग कर रहे हैं उन्हें भी (मुक़ाबले की) इजाज़त दी जाती है क्योंकि उन पर बहुत जुल्म किया गया है और बेशक अल्लाह उनकी मदद करने पर क़ादिर है।” (सूर : हज 39)

फिर क़िताल का हुक्म दिया गया, मगर उन हालात के लिए जब दुश्मन हमले में पहल करे:

فَإِنْ قَاتَلُوكُمْ فَاقْتُلُوهُمْ كَذَلِكَ جَزَاءُ الْكَافِرِينَ (191)

“हाँ अगर वोह खुद तुमसे लड़ें तो तुम भी उन्हें क़त्ल करो। ऐसी ही सज़ा है क़ाफ़िरों के लिए।” (सूर : बक्र 191)

फिर इस शर्त के साथ क़िताल का हुक्म दिया गया कि जब हराम महीने गुज़र चुके हों :

فَإِذَا انْسَلَخَ الْأَشْهُرُ الْحُرُمُ فَاقْتُلُوا الْمُشْرِكِينَ حَيْثُ وَجَدْتُمُوهُمْ

وَخُذُواهُمْ وَاحْصُرُوهُمْ وَاقْعُدُوا لَهُمْ كُلَّ مَرْصَدٍ (5)



“और जब हुमत के महीने गुज़र जाएं तो जहाँ कहीं मुश्रिकों को पाओ, उन्हें क़त्ल करो, उन्हें पकड़ो, उनका मुहासरा (घेराव) करो और उनके लिए हर घात में तैयार बैठो।” (सूर : तौबा 5)

और बिलआखिर कुफ़्फ़ार के खिलाफ़ क़िताल का हुक्म मुतलक़न (आखिरी शक़ल में) दे दिया गया :

وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوا إِنَّ اللَّهَ لَا

يُحِبُّ الْمُعْتَدِينَ ﴿190﴾

“और क़िताल करो अल्लाह की राह में उन लोगों से जो तुमसे लड़ते हैं और हद से मत बढ़ो, यक़ीनन अल्लाह हद से बढ़ने वालों को पसन्द नहीं करता।”

(सूर : बक़र 190) (हाशिया, इब्ने-आबिदीन- 239/3)

लिहाज़ा नुज़ूले-आयात के इस ज़मानी मरहले को समझने की अहमियत साफ़ जाहिर है, जिसमें आयते-सैफ़ की सूरत में क़िताल के हतमी अहकामात नाज़िल हुए।

(जब जिहाद के हतमी अहकामात नाज़िल किए चुके तो अब किसी को ये हक़ नहीं कि मौजूदा दौर को मक्की दौर के मिस्ल करार देकर जिहाद को मुअत्तल कर दे। क्योंकि इस तरह तो आज शराब व सूद की अदम हुमत का सवाल भी खड़ा हो जाएगा कि मक्की दौर में ये भी हराम न थे। जबकि हमारे सामने अल्लाह का ये हुक्म मौजूद है :

الْيَوْمَ أَكْمَلْتُ لَكُمْ دِينَكُمْ وَأَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِي وَرَضِيتُ

لَكُمْ الْإِسْلَامَ دِينًا (3)

“आज हमने तुम्हारे लिए तुम्हारे दीन को मुकम्मल कर दिया है और अपनी नेअमत तुम पर तमाम कर दी है और तुम्हारे लिए इस्लाम के दीन होने पर मैं रज़ामन्द हो गया।” (सूर : माइदा : 3)

अलग़र्ज़ हमारे लिए शरिअत के हतमी अहकामात ही हुज़्जत हैं। (मुतर्जिम)

ख़िलाफ़ते-इस्लामिया के क़याम से पहले, मज़ाकरात

(बातचीत) व मुआहिदात (समझौते) जाइज़ नहीं !

मैं इब्तिदा ही मैं इस बात की तरफ़ इशारा कर देना चाहूंगा कि दावत के इब्तिदाई मराहिल में, जब इसके पास अपने उसूलों के तहफ़फूज़ के लिए कोई कुव्वत व इक्त़िदार न



हो, किसी क्रिस्म के सियासी मज़ाकरात और मकालमे करना जाइज़ नहीं।

वजह ये है कि कमज़ोरी के आलम में मज़ाकरात शुरू कर देने से दावत के बुनियादी उसूल ही ख़तरे में पड़ जाते हैं, दावत अपने असल ख़दो-ख़ाल (शक्लो-सूरत) भी बरकरार नहीं रख पाती और हक़ व बातिल के एक मेज़ पर इकट्ठे बैठने से लोग भी हक़ को ठीक-ठीक पहचानने में नाक़ाम रहते हैं। अन्जामे-कार नतीजा इसके सिवा कुछ नहीं निकलता कि ये अज़ीम दावत सियासी खेल-तमाशों और बैनुलअक़वामी साज़िशों में फंस कर ज़ाए हो जाती है। बेशक इस मरहले के लिए तो कुर्आन हमें ये मुहक़म हिदायात देता है :

قُلْ يَا أَيُّهَا الْكَافِرُونَ (1) لَا أَعْبُدُ مَا تَعْبُدُونَ (2) وَلَا أَنْتُمْ عَابِدُونَ مَا أَعْبُدُ (3)

“कहो, ऐ काफ़िरों ! मैं उसकी इबादत नहीं करता जिसकी तुम इबादत करते हो, ना तुम उसकी इबादत करते हो जिसकी मैं इबादत करता हूँ ...”

(सूर : काफ़िरून 1-3)

ऐसे हालात में तो एक मोमिन का मुअक़फ़ ये होता है :

قُلْ ادْعُوا شُرَكَاءَكُمْ ثُمَّ كِيدُوا فَلَا تُنْظَرُونَ (195) إِنَّ وَلِيَّ اللَّهِ

الَّذِي نَزَّلَ الْكِتَابَ وَهُوَ يَتَوَلَّى الصَّالِحِينَ (196)

“उनसे कहो कि बुला लो अपने ठहराए हुए शरीकों को, फिर तुम सब मिलकर मेरे खिलाफ़ तदबीरें करो और मुझे हर्गिज़ मुहलत न दो। यक़ीनन मेरा हामी व नासिर वो अल्लाह है जिसने ये किताब नाज़िल की है और वह नेक बन्दों की मदद फ़र्माता है।” (सूर : आराफ़ 195-196)

बस नताइज़ से बेपरवाह होकर, अपनी बुनियादी दावत का ऐलान कर देना लाज़िम है। दाइयाने-दीन का फ़र्ज़ बनता है कि वोह इस्लाम की हक़ीकी दावत को लेकर उठ खड़े हों और उसे बिला क़मो-कास्त दुनिया के सामने पेश कर दें, ताकि उन्हें भी आजमाइश की बेड़ियों से गुज़ारा जाए, उन्हें भी तकलीफ़ का सामना करना पड़े, यहां तक कि पेहम सब व इस्ति़क़ामत की ईमानी तपिश उन्हें कुन्दन बना डाले।

पूरे मक्की दौर में रसूलुल्लाह (ﷺ) और आप के सहाबा रज़ि. इसी दो टूक मुअक़िफ़ पर जमे रहे। हाँ, अलबत्ता एक मर्तबा इस्लामी खिलाफ़त कायम हो जाए तो उसके बाद मुआहिदात करने में कोई चीज़ रूकावट नहीं होती।



# कुफ़र से मुआहिदा करने की शराइत !

कुफ़र से मुआहिदा व सुलह करने के मसले में उलमा का इख़्तिलाफ़ है, बाज़ उलमा ने सुलहे-हुदैबिया को मिसाल बनाते हुए इसकी इजाज़त दी है। बाज़ ने सिर्फ़ उन हालात के लिए इजाज़त दी है जब मुसलमान इन्तिहाई कमज़ोर हों और बाज़ ने सुलह करने को हर हाल में नाजाइज़ करार दिया है, क्योंकि उनके नज़दीक “आयाते-सैफ़” ने कुफ़र के साथ मुआहिदा के हर जवाज़ को मन्सूख कर दिया है।

हम ये कहते हैं कि अगर कुफ़र से मुआहिदा करने में मुसलमानों की मस्लिहत हो तो ऐसा करना जाइज़ है, बशर्ते कि मुआहिदे की शर्तों में कोई ऐसी बात न पाई जाती हो जो इस मुआहिदे को शरिअत की रू को बातिल या फासिद कर डाले। मसलन :

**1. कोई ऐसी शर्त शामिल न हो जो मुसलमानों की गज़ भर ज़मीन भी कुफ़र को दे।**

ये बात किसी तौर जाइज़ नहीं कि मुआहिदे में कोई ऐसी शर्त शामिल हो जो मुसलमानों की गज़ भर ज़मीन भी कुफ़र को दे या उस पर उनका कब्ज़ा तस्लीम करे।

(नहायातुल मुहताज-58/8)

(कुफ़र को किसी मुस्लिम सरज़मीन पर अड्डे (जैसेकि क़तर, बहरीन, सऊदी अरब में) फ़राहम करना भी इसी उसूल की रू से हराम है व पाकिस्तान का कश्मीर का एक बड़ा हिस्सा चीन को दे देना भी कुछ ऐसा ही है। (मुतर्जिम))

सरज़मीने-इस्लाम चूँकि किसी की ज़ाती मिल्कियत नहीं, इसलिए इसे अमलन कुफ़र के हवाले करना तो बहुत दूर की बात है, किसी को ये हक़ भी नहीं पहुंचता कि इस बारे में मज़ाकरात (बातचीत) तक करे। ऐसी कोई भी शर्त मुआहिदे को बातिल कर देती है, क्योंकि ज़मीन दरहक़ीक़त अल्लाह की और फिर अल्लाह के दीने-इस्लाम की है और किसी को ये हक़ नहीं कि वोह किसी दूसरे की मिल्कियत में दखल दे, या कोई ऐसी चीज़ बेचे या तोहफ़े में दे डाले जिसका वोह सिरे से मालिक ही नहीं।

चुनांचे जब तक रूस अफ़ग़ानिस्तान (और अब चेचेन्या वग़ैरह) का आखिरी गज़ तक खाली नहीं कर देता, जब तक यहूदी पूरे फ़िलिस्तीन से निकल नहीं जाते (और अब इसी तरह अमरीका, बर्तानिया और दीगर सलीबी मुमालिक इराक़ व अफ़ग़ानिस्तान से भाग नहीं जाते, जज़िरा-ए-अरब और दीगर मुस्लिम इलाक़ों में कायम अड्डे ख़त्म नहीं कर देते (मुतर्जिम) ... तब तक उनमें से किसी से भी मज़ाकरात करना जाइज़ नहीं !



## 2. जब जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाए तो दुश्मन से सुलह के तमाम मुआहिदे (समझौते व सुलह) बातिल हो जाते हैं।

जब जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाए तो दुश्मन से सुलह के तमाम मुआहिदे बातिल हो जाते हैं, मसलन जब दुश्मन मुसलमानों को किसी भी सरज़मीन पर हमला कर दे या मुसलमानों को नुकसान पहुंचाने की कोशिशों में हो तो सुलह का कोई मुआहिदा बरकरार नहीं रहता। “फ़तहुल उला अल मालिक” में सुलह और मुआहिदा के मौजूद के तहत “अलमेअयार” के बाबुल जिहाद के हवाले से ये वाज़ेह फ़तवा मौजूद है।

“अगर खलीफ़ा ईसाइयों से सुलह के मुआहिदे पर दस्तख़त कर दे, मगर मुसलमानों को साफ़ नज़र आ रहा हो कि उस वक़्त उनके लिए जिहाद ही का हुक्म है, तो खलीफ़ा की जानिब से किया गया मुआहिदा टूट जाएगा और उनका ये फ़ेअल मरदूद ठहरेगा।” (फ़तहुल उला अलमालिक-182/1)

चुनांचे जहाँ कहीं भी जिहाद फ़र्ज़ होगा, सुलह करना जाइज़ न रहेगा, मसलन जब दुश्मन मुसलमानों पर ग़ालिब हो। इसी तरह जिहाद के फ़र्जे-ऐन होने की दीगर जितनी सूरतें हम पहले ज़िक्र कर चुके हैं, उन सब में भी सुलह करना मना है, क्योंकि सुलह करने का लाज़िम नतीजा यही निकलेगा कि अल्लाह तआला की जानिब से आइदकर्दा एक फ़र्जे-ऐन, यानी जिहाद की अदायगी ग़लत करार पाएगी, जबकि बालादस्त हाथ कुफ़्फ़ार ही का रहेगा, हालांकि दिफ़ाई जिहाद में तो मतलूब ही ये होता है कि कुफ़्फ़ार की शौक़त तोड़कर मुसलमानों को उनके शर से निजात दिलाई जाए।

काज़ी इब्ने-रूश्द नक़ल करते हैं कि उलमा इस बात पर मुत्तफ़िक़ है कि अगर जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाए तो उसकी फ़र्जियत “फ़र्जे-हज” से भी बढ़कर होती है। क्योंकि जिहाद जब फ़र्ज़ हो जाए तो उसकी फ़ौरी अदायगी लाज़िम होती है, जबकि हज को मुअख़्खर करने की शायद फिर भी कोई गुंजाइश मौजूद हो।

कोई भी ऐसा शख़्स जो शरिअत में उसूलों पर गहरी निगाह रखता हो, इसी नतीजे पर पहुंचेगा कि मज़कूर बाला मुआहिदा व सुलह को तोड़ना फ़र्ज़ है क्योंकि ऐसा मुआहिदा फ़र्जे-ऐन तर्क करने का ज़रिया भी बनता है, जो किसी भी सूरत में जाइज़ नहीं और ज़ाहिर है कि नाजाइज़ हुक्म की पाबन्दी कभी लाज़िम नहीं हो सकती।

## 3. हर वोह शर्त बातिल है जो शरियत को मुअत्तल करने या शआइरे-दीन की अहमियत घटाने का सबब बने।

हर वोह शर्त बातिल है जो शरिअत को मुअत्तल करने या शआइरे-दीन की अहमियत घटाने का सबब बने। मसलन : रूस (और अब इसी तरह अमरीका व यूरोप)



से कोई ऐसा मुआहिदा करना जाइज नहीं जिसके नतीजे में वोह अफ़ग़ानिस्तान (इराक़, बोस्निया और चेचेन्या वगैरह) में कायम होने वाली हुकूमतों में किसी तौर भी दखलअन्दाज़ी कर सकें, क्योंकि ऐसा करना जिहाद पर पानी फैरने और उसके अहदाफ़ को ज़ाया व बर्बाद करने के मुतरादिफ़ होगा।

(मिस्र का इज़राईल व अमरीका से कैम्प डेविड समझौता, इस तरह के बातिल समझौते की जीती जागती मिसाल है जिसमें हुस्ने-मुबारक ने यहूदो-नसारा के हाथों फ़िलीस्तीन के तहफ़फ़ूज़ को बेच डाला— मुतर्जिम)

**4. शरिअत किसी ऐसे मुआहिदे की इजाज़त नहीं देती जिसमें मुसलमानों की ज़िल्लत की एक छोटी सी झलक तक दिखती हो।**

शरिअत किसी ऐसे मुआहिदे की इजाज़त नहीं देती जो मुसलमानों की तज़लोल का बाइस बने, या जिसमें मुसलमानों की ज़िल्लत का शाइबा (निशान) तक झलकता हो जैसा कि इमाम जुहरी रह. ये हदीस नक़ल करते हैं कि :

“जब (ग़ज़्वाए ख़न्दक के मौक़े पर एक तरफ़ मुशिकीन का लश्कर मुतक़ल्लन सरो पर मौजूद था और दूसरी तरफ़ यहूद से ख़यानत का डर था, जिसकी वजह से मुसलमानों के घर भी महफूज़ न रहे थे और हर सिम्त से ही हमले का खौफ़ था, जब ये कठिन सूते-हाल ख़त्म होती नज़र न आई और) लोगों पर आजमाइश की शिद्दत बहुत बढ़ गई तो रसूलुल्लाह (ﷺ) ने कबीला—ए— ग़तफ़ान के दो सरदारों, वएअना बिन हिस्न बिन हनीफ़ा बिन बद्र और हारिश बिन अबी औफ़ अलमज़नी की तरफ़ अपना नुमाइन्दा भेजा और उन्हें इस शर्त पर मदीना के फलों की पैदावार का एक तिहाई हिस्सा देने की पेशकश की कि वोह अपने लश्कर को लेकर वापस लौट जाएं। बस रसूलुल्लाह (ﷺ) और उनके बीच सुलह की बात तै हो गई, मगर गवाहों की मौजूदगी में मुआहिदे को हतमी (आखिरी) शक्ल नहीं दी गई। बस जब रसूलुल्लाह (ﷺ) ने मुआहिदे को हतमी शक्ल देने का इरादा फ़र्माया तो आप (ﷺ) ने हजरत साद बिन मुआज़ रजि. और हजरत साद बिन उबादा रजि. को बुला भेजा और उनसे मशवरा तलब फ़र्माया। आप (ﷺ) ने उन्हें तफ़सीलन सारी सूते-हाल बताई और उनसे ये भी फ़र्माया :

“हम जानते हैं कि पूरा अरब (आपके खिलाफ़ एक होकर) एक ही कमान से आप पर तीर बरसा रहे हैं, तो क्या आप की राय में ये मुनासिब होगा कि हम उन्हें मदीना के फ़लों में से कुछ हिस्सा न दें?”

सहाबा रजि. ने जवाबन अर्ज किया :

“ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ)! अगर आप (ﷺ) की यही राय है तो आप (ﷺ)



की राए की इतिबाअ की जाएगी, लेकिन (अगर ऐसा नहीं, तो) हमने तो कभी उन्हें एक खजूर तक नहीं दी, इल्ला ये कि ये हमसे कुछ खरीदें या बतौर मेहमान हमारे पास आएँ और ये तो उस वक्त की बात है कि जब हम काफ़िर थे, अब तो अल्लाह ने हमें इस्लाम के ज़रिए इज़्जत भी बख़शी है ! “सहाबा-ए-किराम का ये जवाब सुनकर रसूलुल्लाह (ﷺ) बहुत खुश हुए।” (इअलाउस्सुनन 8/12, मुर्सल-क़वी)

अन्सार रज़ि.को सुलह के इस मुआहिदे में अपनी तज़लील(बेइज़्जती)महसूस हुई, चुनांचे उन्होंने सुलह करना पसन्द न किया, और रसूलुल्लाह (ﷺ) ने भी अपने असहाब रज़ि.की राए को पसन्द करते हुए सुलह करने से इन्कार कर दिया। बाज़ रिवायत में सहाबा रज़ि. के ये अल्फ़ाज भी मन्कूल हैं : “हम तुम्हें तलवार (की मार) के सिवा कुछ न देंगे।” (अहकामुल कुआन लिल जसास)

**5. मुआहिदे में ऐसी कोई शर्त नहीं हो सकती जो इस्लामी शरिअत के वाज़ेह अहकामात से मुतसादिम हो।**

मुआहिदे में ऐसी कोई शर्त नहीं हो सकती जो इस्लामी शरियत के वाज़ेह अहकामात से मुतसादिम हो। मसलन :

(अ) ऐसी शर्त जो कुफ़्फ़ार को जज़िरा-ए-अरब में रहने की इजाज़त दे, क्योंकि रसूले-अकरम (ﷺ) का फ़र्मान है :

“मैं ज़रूर बिलज़रूर यहूद व नसारा को जज़िरा-ए-अरब से निकाल कर दम लूंगा यहां तक कि मुसलमान के सिवा किसी को बाक़ी नहीं छोड़ूंगा।” (अल फ़तहुल रब्बानी 120/14)

(ब) ऐसी शर्त जिसके नतीजे में कोई मुसलमान औरत कुफ़्फ़ार को लौटाई जाए :

فَإِنْ عَلِمْتُمُوهُنَّ مُؤْمِنَاتٍ فَلَا تَرْجِعُوهُنَّ إِلَى الْكُفَّارِ لَا هُنَّ (10)

“बस जब तुम जान लो कि वोह (औरतें)मुसलमान हैं तो उनको कुफ़्फ़ार की तरफ़ मत वापस करो क्योंकि न तो वोह औरतें उन काफ़िरों के लिए हलाल हैं और न वोह काफ़िर उन औरतों के लिये हलाल हैं।” (अलमुमतहिन्ना-10)

अलबत्ता इस मसले में उलमा का इख़्तिलाफ़ है कि क्या किसी मुसलमान मर्द को कुफ़्फ़ार की तरफ़ लौटाना जाइज़ है या नहीं ?

बाज़ फ़ुक़हा सुलहे-हुदैबिया पर क़यास करते हुए इसकी इजाज़त देते हैं, लेकिन बेशतर के नज़दीक ऐसा करना जाइज़ नहीं और उसकी बजह से बयान की जाती है कि सुलहे-हुदैबिया में मक्का से मदीना आने वाले मुसलमानों को मुश्रीकीन की तरफ़ लौटा



देने का जो वादा किया गया था, उसकी इजाजत सिर्फ़ रसूलुल्लाह (ﷺ) के लिए थी, क्योंकि आप (ﷺ) को पहले से मालूम था कि अल्लाह तआला उन मुसलमानों के लिए निजात की कोई सूरत पैदा फ़र्माएंगे।

लिहाज़ा, हम भी इसी राए को तर्जीह देते हैं।

हजरत बराअ बिन आज़िब रजि. फ़र्माते हैं :

रसूलुल्लाह (ﷺ) ने हुदैबिया के दिन तीन शराइत पर मुशिकीन से सुलह की थी, जिनमें ये भी शामिल थी कि : जो मुसलमान नबी (ﷺ) के पास से मुशिकों की तरफ़ जाएगा, उसे लौटाया नहीं जाएगा। जो मुसलमान मुशिकों से निकल कर नबी (ﷺ) के पास आएगा, उसे वापस कर दिया जाएगा।

इस मौक़े पर रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फ़र्माया था :

“जो कोई हममें से निकल कर उनके पास जाए तो अल्लाह तआला उसको दूर ही रखे और जो कोई उनमें से निकल कर हमारे पास आएगा तो अल्लाह उसके लिए कोई रास्ता निकाल देगा और उसकी मुशिकल को आसान कर देगा।”

(मुस्लिम) (देखिये, तफ़सीर अलकुर्तबी 39/8)

(जो लोग कुफ़्फ़ार के साथी बनकर मुसलमानों को दुश्मन के हवाले करते हैं वोह सुलह हुदैबिया की शराइत में भी अपनी हरकतों का जवाज़ तलाश नहीं कर सकते, क्योंकि :

1. ये वोह इस्लामी क़यादतें नहीं हैं कि जिन्हें मुसलमानों का नुमाइन्दा बनकर कुफ़्फ़ार से मुआहिदा करने का हक़ हो।

2. जिहाद आज फ़र्जे-ऐन है, इसलिए हमलावर कुफ़्फ़ार से मुआहिदा तो-सुलह करना और पुरअमन सिफ़ारती (एक-दूसरे के यहां राजदूत रखना) ताल्लुकात करना वैसे ही जाइज़ नहीं।

3. ये लोग हालते-अमन में किसी मुसलमान को कुफ़्फ़ार के हवाले नहीं कर रहे हैं, बल्कि इस्लाम के खिलाफ़ जारी जंग में कुफ़्फ़ार के साथी बनकर हक़-गौ उलमा, फी सबीलिल्लाह ख़र्च करने वाले अहले-ख़ैर और कुफ़्फ़ार के खिलाफ़ बरसरे-पैकर मुजाहिदीन को पकड़ कर दुश्मनों के हाथ बेच रहे हैं। इस फ़ैअल को कुर्आन न सिर्फ़ हराम करार देता है बल्कि यहां तक कहता है :

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تَتَّخِذُوا الْيَهُودَ وَالنَّصَارَىٰ أَوْلِيَاءَ

بَعْضُهُمْ أَوْلِيَاءُ بَعْضٍ وَمَنْ يَتَوَلَّهُمْ مِنْكُمْ فَإِنَّهُ مِنْهُمْ (51)



“ऐ ईमान वालों ! यहूद व नसारा को अपना दोस्त मत बनाओ। ये एक दूसरे के दोस्त हैं और तुम में से जो कोई भी उन्हें अपना दोस्त बनाए वोह उन्हीं में से है।” (अलमाइदा : 51)

(क्या मुशर्रफ़, मुबारक, मक़तूमो-फहद, और करज़ई को उलमा-ए-सू ने यह आयाते-रब्बानी नहीं सुनाई, या उन्होंने इन आयात को अपने लिये मन्सूख समझ लिया है।

(मुतर्जिम))

**6. मुसलमानों के इलाक़े में कुफ़्र को अपने शआइर (मज़हबी निशानियों) के इज़हार की इजाज़त देना जाइज़ नहीं।**

इसी तरह ये भी जाइज़ नहीं कि मुआहिदे में कोई ऐसी बात शामिल हो जो कुफ़्र को मुसलमानों के इलाक़े में अपने शआइर के इज़हार की इजाज़त दे। मसलन, कोई ऐसा मुआहिदा जो कुफ़्र को अपनी इबादतगाहें, मसलन कलीसा-मन्दिर (पाकिस्तान में कृष्ण मन्दिर व कटरासिराज मन्दिर, जिसकी स्थापना, इस्लाम दुश्मन आड़वाणी को बुलाकर की गई थी) वगैरह तामीर करने की इजाज़त दे या ईसाई मिशनरियों (और उसी किस्म की ऐन.जी.ओज़ वगैरह) को मुसलमानों के किसी भी इलाक़े में, बिलखुसूस जज़िरा-ए-अरब में घुसने का मौक़ा दे, क्योंकि उनका हदफ़ इसके सिवा कुछ नहीं होता है कि वोह मुसलमानों को फ़ितने में मुब्तिला करें और उनके अक्राइद को तबाह व बर्बाद करें।

शरिअत के इन उसूलों की रोशनी में ये बात बिल्कुल वाज़ेह हो जाती है कि फिलिस्तीन (जो दरहक़ीक़त मुसलमानों और इस्लाम की सरज़मीन है, उस) का कोई सियासी हल ढूँढ़ना या उसके लिए किसी से मज़ाकिरात करना न सिर्फ़ ग़लत है, बल्कि अपनी असल के ऐतबार से ही ऐसा बातिल है कि किसी भी हीले-बहाने से उसे दुरूस्त करार देना मुमकिन नहीं।

जहां तक अफ़ग़ानिस्तान का ताअल्लुक है तो अगर चन्द शराइत पूरी होती हों तो यहां मुआहिदे-सुलह करने की इजाज़त दी जा सकती है :

1. रूस (और अब अमरीका और यूरोपीय व सलीबी अक्राम भी) मुसलमानों की तमाम सरज़मीनों से बगैर शर्त निकल जाएं।
2. अफ़ग़ानिस्तान से उनके निकलने के बाद यहां इस्लामी इमारत कायम हो और ये उसमें किसी किस्म की मुदाख़िलत न करें। मसलन न बादशाह को वापस लाने की कोशिश की जाए, न ही कोई ऐसी शराइत मुसल्लत की जाएं जिनका मक़सद अहले-अफ़ग़ानिस्तान के अक्राइद को बिगाड़ना हो।

3. अफ़ग़ानिस्तान से उनका निकलना बगैर शर्त हो।



4. ये मुजाहिदीन की हैसियत बाकायदा तौर पर तसलीम करें और खुद उनसे सुलह की दरख्वास्त करें, (न कि मुसलमान उनसे सुलह की भीख मांगे) क्योंकि अल्लाह तआला का फ़र्मान है :

وَإِنْ جَنَحُوا لِلسَّلَامِ فَاجْنَحْ لَهَا وَتَوَكَّلْ عَلَى اللَّهِ (61)

“और अगर वोह (कुफ़ार) सुलह की तरफ झुकें तो तुम भी उसके लिए आमादा हो जाओ और अल्लाह पर तवक़ल करो।” (सूर : अन्फाल : 61)  
अस्सदी रह. और इब्ने-जैद रह. फ़र्माते हैं :

“अगर वोह खुद तुम्हें सुलह की पेशकश करें तब तुम दावत कुबूल कर लो।”

(हाशिया अश-शिरवानी व इब्नुल कासिम, अलातुहफ़तुल मुहताज 306/9)

सही राय यही है कि किसी मुआहिदे में मौजूद फ़ासिद (गलत व नाजायज़) शर्त उस पूरे मुआहिदे को ही फ़ासिद कर देती है। मसलन,

कोई ऐसी शर्त जो, मुसलमान कैदियों की रिहाई में रूकावट बनती हो,  
या इस्लामी मकबूज़ात पर उनके कब्जे को बरकरार रखती हो,  
या कुफ़ार की कैद से फ़रार होने वाला मुसलमान कैदी उन्हें वापस करती हो,  
या कुफ़ार को हिजाज़ (अरब) में रहने की इजाज़त देती हो,  
या हमारे इलाकों में शराब या उरयानियत (नंगापन) के फैलने का ज़रिया बनती हो,  
या कुफ़ार में से निकलकर हमारे पास आने वाले किसी भी शख्स को वापस लौटाती हो।” (तफ़सीरूल-कुर्तबी 39/8)

7. मुजाहिदीन मुतमईन हों कि दुश्मन सुलह की पेशकश में मुख़िलस है और धोखा नहीं देना चाहता।

मुजाहिदीन मुतमईन हों कि दुश्मन सुलह की पेशकश में मुख़िलस है और धोखा नहीं देना चाहता। लिहाज़ा आज जो लोग ‘पुरअमन हल’ का मुतालबा कर रहे हैं या कोई ‘दरमियानी रास्ता’ ढूँढ़ने के ख्वाहिशमन्द हैं और महज़ इसलिये जिहाद के हदफ़ यानि “इस्लामी हुकूमत के क़याम और शरिअत की बालादस्ती” के ऐलान से घबराते हैं कि ये एक ऐसा हदफ़ है जो मरिबी मुमालिक को नागवार गुज़रेगा और वो इसकी हर मुम्किन मुख़ालफ़त करेंगे... उन लोगों ने दरअस्ल इस बात को समझा ही नहीं कि इस जिहाद का हकीकी हदफ़ क्या है ? ये लोग किसी वाज़ेह इस्लामी सोच के हामिल हैं। जान लीजिये कि ऐसे लोगों को जंग में साथ रखना जाइज़ नहीं।

जिहाद व मुजाहिदीन की क़यादत करना तो दूर की बात है, ये लोग इस



काबिल भी नहीं कि जिहाद में एक आम सिपाही के तौर पर भी शरीक हों, क्योंकि अल्लाह रब्बुल इज्जत फ़रमाते हैं :—

فَإِنْ رَجَعَكَ اللَّهُ إِلَى طَائِفَةٍ مِنْهُمْ فَاسْتَأْذِنُوكَ لِلْخُرُوجِ فَقُلْ لَنْ تَخْرُجُوا

مَعِيَ أَبَدًا وَلَنْ تُقَاتِلُوا مَعِيَ عَدُوًّا (83)

“पस, अगर अल्लाह तआला तुम्हें वापस उनके दरमियान ले जाए और आईन्दा फिर उनमें से कोई गिरोह तुम से जिहाद के लिये निकलने की इजाज़त मांगे तो कह देना कि तुम हरगिज़ मेरे साथ नहीं निकलोगे, और न मेरे हमराह होकर किसी (दुश्मने-दीन) से लड़ोगे।” (सूर : तौबा-83)

इमाम कुर्तबी रह. फ़रमाते हैं, “यह आयत इस बात की दलील है कि किसी फ़ित्नापरदाज़ या फ़ित्ने को हवा देने वाले को जंग में साथ रखना जाइज़ नहीं, बेशतर फुक्हा ने किताबुल-जिहाद में यह बात सराहत के साथ लिखी है कि किसी ऐसे शख्स को अपने लश्कर में शामिल करना जायज़ नहीं जो बेवकूफ़ हो या लोगों को जिहाद से रोकता हो, या फ़ित्ना व फ़साद फैलाता हो या ज़रूरत के वक्त साथ छोड़ जाता हो या जिहाद की राह में रूकावटें डालता हो।” (तफ़सीरूल-कुर्तबी, 318/8)

ऐ अल्लाह !

अफ़ग़ानिस्तान, फिलिस्तीन, चेचेन्या, इराक़, फिलिपाइन, लेबनान और हर जगह बरसरे-पैकार मुजाहिदीन की मददो-नुसरत फ़रमा। इस्लाम के परचम को सरबुलन्दी अता फ़रमा।

इब्ने-हजर अल-हैसमी रह. फ़रमाते हैं।

कुर्आन की ताबेअ हुकूमत कायम फ़र्मा।

और हमें अपनी राह में शहादत अता फ़र्मा। (आमीन)



# बाबे-इखिताम (आखिरी अध्याय)

मसले का ताअल्लुक दिल से है।

मैं अपनी गुप्तगू समेटते हुए ये कहना चाहूंगा कि दलाइल का ढेर लगा देने या बहुत सी नुसूस पेश कर देने से ये मसला समझ नहीं आता। इस मसले का ताअल्लुक दरहकीकत दिल से है।

अल्लाह तआला अगर दिल को नूर बख्श दे तो उस नूर की रोशनी में इन्सान को सब कुछ साफ़-साफ़ नज़र आता है और उसे हक़ पहचानने में कोई दुश्वारी नहीं होती। लेकिन अगर दिल ही नूर से महरूम हो तो इन्सान बिल्कुल वाज़ेह चीज़ें देखने में भी नाकाम रहता है।

فَإِنَّهَا لَا تَعْمَى الْأَبْصَارُ وَلَكِنْ تَعْمَى الْقُلُوبُ الَّتِي فِي الصُّدُورِ (46)

“हकीकत ये है कि आंखें अन्धी नहीं होतीं बल्कि वह दिल अन्धे हो जाते हैं जो सीनों में हैं।” (सूर : अलहज: 46)

आयाते-इलाही को समझने और दलाइल को पहचानने के लिए दिल की आंखें दरकार होती हैं और दिल की ये आंखें अल्लाह के खौफ़, अहकामे-शरिअत की इताअत और इबादत में इन्हिमाक ही से मिलती हैं।

قَدْ جَاءَكُمْ بَصَائِرُ مِنْ رَبِّكُمْ فَمَنْ أَبْصَرَ فَلِنَفْسِهِ وَمَنْ عَمِيَ فَعَلَيْهَا وَمَا

أَنَا عَلَيْكُمْ بِحَفِیْظٍ (104)

“अब तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से रोशन दलाइल पहुंच चुके हैं, सो जो कोई बसारत से काम लेगा वोह अपना फ़ायदा करेगा और जो शख्स अन्धा बना रहेगा वोह अपना ही नुकसान करेगा, और मैं कोई तुम्हारे ऊपर निगरां तो हूँ नहीं।”

(अल-अनआम, 104)

अल्लाह तआला की अताक़र्दा इस बसीरत से दिल में मअरिफ़तो-अदराक के चश्में फूट पड़ते हैं। ये वो नेअमत है जो न ही बहुत कुछ पढ़ने से हासिल होती है जो न ही कहीं से खरीदी जा सकती है। ये तो महज़ अल्लाह का इनाम होता है कि वोह किसी बन्दे की क़ल्बी बसीरत के बक़दर उसे अपनी किताब और अपने दीन का फ़हम इनायत फ़र्मा दे।



## मोमिन की फ़िरासत से डरो, क्योंकि वोह अल्लाह अज़्ज वजल के नूर से देखता है।

ये बसीरत दिल की ज़मीन में जड़ें पकड़ती है और इसी बदौलत इन्सान हक़ व बातिल और सच्चे व झूठे लोगों में फर्क करता है। अल्लाह तआला फ़र्माता है :

إِنَّ فِي ذَلِكَ لَآيَاتٍ لِّلْمُتَوَسِّمِينَ (75)

“यक़ीनन इसमें कई निशानियां हैं अहले-बसीरत के लिए।” (सूर : हिज़्र 75)

मुजाहिद रह. इस आयत की तशरीह में लिखते हैं :

(यानी) फ़हम व फ़िरासत रखने वालों के लिए।

तिर्मिज़ी शरीफ़ में हजरत अबूसईद खुदरी रज़ि. से रिवायतकर्दा हदीस है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फ़र्माया : “मोमिन की फ़िरासत से डरो, क्योंकि वोह अल्लाह अज़्जवजल के नूर से देखता है, फिर आप (ﷺ) ने ये आयत पढ़ी (तर्जुमा) यक़ीनन इसमें कई निशानियां हैं अहले-बसीरत के लिए।”

(तिर्मिज़ी, तफ़सीरुल कुआन अन रसूलुल्लाह (ﷺ))

### ख़्वाहिशात की पैरवी करने वाले हक़ के खिलाफ़ चल पड़ते हैं।

अहले-इल्म में से जो भी दुनिया से मुहब्बत रखेगा और उसे आख़िरत पर तर्जीह देगा, वोह लाज़िमन अपने फ़तवों और फैसलों में, अपने खुतबों और तहरीरों में अल्लाह और उसके दीन के बारे में नाहक बात कहेगा। वजह ये कि अल्लाह सुब्हानहू तआला के अहकामात अक्सर औकात लोगों, बिलखुसूस अहले-इक्तिदार (ताक़तवर लोगों) की ख़्वाहिशात और मफ़ादात से टकराते हैं। बस जो शख़्स भी अपनी ख़्वाहिशात की पैरवी करना चाहे उसे लाज़िमन हक़ के खिलाफ़ चलना पड़ेगा। अगर आलिम और हाकिम ख़्वाहिशात के पैरोकार और ओहदों के तलबगार हों, तो उनके लिए हक़ की मुख़ालिफ़त किए बग़ैर कोई चारा न होगा। बिलखुसूस जब किसी मसले में शुबहात पैदा हो जाएं, तो ये शुबहात और ख़्वाहिशात मिलकर हक़ का चेहरा छिपा लेंगे और उनकी शहवतें उन्हें खींचकर उसी सिम्त ले जाएंगी जिससे बातिल राज़ी हों।

और हक़ बिल्कुल निखर कर सामने आ जाए, किसी शक व शुब्हे की गुंजाइश बाक़ी न बचे तो ये लोग अपनी ख़्वाहिशात के हाथों मजबूर होकर उसकी खुल्लम-खुल्ला मुख़ालिफ़त पर उतर आएंगे और अपने नफ़्स को ये कहकर मुतमइन करेंगे कि : “ख़ैर है, बाद में तौबा कर लेंगे।” ऐसों ही के बारे में अल्लाह तआला फ़र्माते हैं :

فَخَلَفَ مِنْ بَعْدِهِمْ خَلْفٌ أَضَاعُوا الصَّلَاةَ وَاتَّبَعُوا الشَّهَوَاتِ (59)



“फिर अगली नस्लों के बाद ऐसे नाखल्फ उनके जानशीन हुए कि उन्होंने नमाज़ जाए कर दी और नफ्सानी ख्वाहिशात के पीछे पड़ गए।” (सूर : मरयम : 59) और ये फ़र्मानि—इलाही भी उन्हीं के बारे में है :

فَخَلَفَ مِنْ بَعْدِهِمْ خَلْفٌ وَرِثُوا الْكِتَابَ يَأْخُذُونَ عَرَضَ هَذَا الْأَدْنَى وَيَقُولُونَ سَيُغْفَرُ لَنَا وَإِنْ يَأْتِهِمْ عَرَضٌ مِثْلُ الَّذِي أَخْذُوا أَلَمْ يُؤْخَذْ عَلَيْهِمْ مِيثَاقُ الْكِتَابِ أَنْ لَا يَقُولُوا عَلَى اللَّهِ إِلَّا الْحَقَّ وَدَرَسُوا مَا فِيهِ وَالِدَارُ الْأُخْرَىٰ خَيْرٌ لِلَّذِينَ يُتَّقُونَ أَفَلَا تَعْقِلُونَ (169)

“फिर अगली नस्लों के बाद ऐसे नाखल्फ उनके जानशीन हुए जिन्होंने किताबे—इलाही को विरासत में पाया (मगर फिर भी) इस हकीर दुनिया के फ़ायदे समेटते हैं और कहते हैं कि हमारी मग़फ़िरत ज़रूर हो जाएगी, हालांकि अगर उनके पास फिर वैसा ही माल व मताअ (दीन फ़रोशी के एवज) आने लगे तो ये उसको ले लेते हैं, क्या उनसे किताब का अहद नहीं किया जा चुका है कि अल्लाह के नाम पर वही बात कहें जो हक़ हो? और जो कुछ किताब में लिखा है कि ये उसे खुद पढ़ भी चुके हैं और आख़िरत वाला घर उन लोगों के लिए (इस दुनिया से) बेहतर है जो (उन कबीह आमाल से) परहेज़ करते हैं, फिर क्या तुम नहीं समझते।” (सूर : आराफ : 169)

ख्वाहिशाते—नफ़्स की पैरवी दिल की आंखों को अन्धा कर देती है। फिर सुन्नत और बिदअत में फर्क करना भी मुमकिन नहीं रहता, बल्कि बाज़ औकात मुआमला इससे भी ज़्यादा ख़तरनाक हो जाता है और इन्सान को सुन्नत, बिदअत और बिदअत सुन्नत दिखाई देने लगती है। अगर उलमा दुनिया को आख़िरत पर तर्जीह दें, ख्वाहिशात की पैरवी करें और हुकूमतों से ख़ौफ़ खाएं तो वोह इसी आफ़त का शिकार होते हैं।

दर्जे—ज़ेल आयात में ऐसे अहले—इल्म ही का ज़िक्र हो रहा है :

وَاتْلُ عَلَيْهِمْ نَبَأَ الَّذِي آتَيْنَاهُ آيَاتِنَا فَانْسَلَخَ مِنْهَا فَاتَّبَعَهُ الشَّيْطَانُ فَكَانَ مِنَ الْغَاوِينَ (175) وَلَوْ شِئْنَا لَرَفَعْنَاهُ بِهَا وَلَكِنَّهُ أَخْلَدَ إِلَى الْأَرْضِ وَاتَّبَعَ هَوَاهُ فَمَثَلُهُ كَمَثَلِ الْكَلْبِ إِنْ تَحْمِلْ عَلَيْهِ يَلْهَثَ (176)



“और (ऐ नबी! (ﷺ) उनके सामने उस शख्स का हाल बयान करो जिसको हमने अपनी आयात (का इल्म) अता किया था मगर वोह उनकी पाबन्दी से भाग निकला। आखिरकार शैतान उसके पीछे पड़ गया यहां तक की वोह भटकने वालों में शामिल होकर रहा। अगर हम चाहते तो उसे इन आयतों के जरिये से बुलन्दी अता करते, मगर वोह तो दुनिया की तरफ माइल हो गया और अपनी नफसानी ख्वाहिशात की पैरवी करने लगा। लिहाजा उसकी हालत कुत्ते की सी हो गई कि तुम उस पर हमला करो तब भी जबान लटकाए रहे और उसे छोड़ दो तब भी जबान लटकाए रहे।” (सूर : आराफ़ : 175-176)

## हक़ को पहचानने के लिए ईमानी बसीरत दरकार है, जो तक्वे से मिलती है।

दर्ज बाला आयात से ये बात वाज़ेह हो जाती है कि महज़ नुसूस और दलाइल का होना काफ़ी नहीं, हक़ को पहचानने के लिए ईमानी बसीरत भी दरकार है। अगर दुनिया की हिर्स (लालच) सीने में धर कर ले, गुनाहों की कसरत से दिलों पर जंग चढ़ जाए और मअसियते-इलाही के सियाह नुकते फैलते-फूलते पूरे क़ल्ब को तारीक कर डालें तो नूर की कोई किरण भी दिल में दाख़िल नहीं हो पाती और जब दिल सियाह हो जाए तो इन्सान चीज़ों को अपनी असल सूरत में नहीं देख सकता, हक़ व बातिल आपस में घड़मड़ हो जाते हैं, और हक़ को पहचानना मुमकिन नहीं रहता, बल्कि हक़ बातिल और बातिल हक़ दिखने लगता है।

इन्सान को फुरक़ान यानी हक़ व बातिल में फर्क करने की सलाहियत तभी मिलती है, उसका दिल गुनाहों की आलूदगी से तभी पाक होता है और तभी उसे दिल के शफ़फ़ाफ़ आईने में हर चीज़ अपनी असल सूरत में साफ़ और वाज़ेह नज़र आती है जब वोह तक्वा इख़्तियार कर ले।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِن تَتَّقُوا اللَّهَ يَجْعَلْ لَكُمْ فُرْقَانًا وَيُكَفِّرْ عَنْكُمْ  
سَيِّئَاتِكُمْ وَيَغْفِرْ لَكُمْ وَاللَّهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيمِ (29)

“ऐ ईमान वालों! अगर तुम अल्लाह का तक्वा इख़्तियार करोगे तो वोह तुम्हें फुरक़ान अता करेगा और तुम्हारे गुनाहों को तुम से दूर कर देगा और तुम्हें बख़्श देगा और अल्लाह बड़े फ़ज़ल वाला है।” (सूर : अनफ़ाल 29)



इसीलिए, अस्लाफ़ को जब भी कोई मसला दरपेश होता या वोह किसी मामले में उलझाव का शिकार होते, तो कहते:

“चलो, महाज़ (मोर्चे) वालों से पूछें, क्योंकि वही लोग अल्लाह के सबसे ज्यादा करीब हैं।”

“इमाम अहमद बिन हम्बल रह., अब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. और दीगर उलमा फ़र्माते हैं कि जब लोगों के दरमियान किसी बात में इख़िलाफ़े-राय पैदा हो जाए तो देखो कि महाज़ वाले किस तरफ़ हैं क्योंकि बेशक हक़ उनके साथ है, इसलिए कि अल्लाह तआला फ़र्माते हैं :

وَالَّذِينَ جَاهَدُوا فِينَا لَنَهْدِيَنَّهُمْ سُبُلَنَا (69)

(और जिन लोगों ने हमारी राह में जिहाद किया हम जरूर बिलजरूर उनको अपने रास्तों की हिदायत देंगे।” (अनकबूत-69)

(मज्मुआ अलफतावा लिल इब्नेतैमिया, 442/28)

जब इमाम अहमद रह. से पूछा गया कि आपके बाद हम किससे शरई मसाल पूछा करें? तो आप रह. ने फ़र्माया : “अबूबकर वराक़ रह. से पूछना क्योंकि वोह साहिबे-तक़वा हैं और मुझे उम्मीद है कि अल्लाह तआला उन्हें सहीह जवाब देने की तौफ़ीक़ देंगे।”

बुख़ारी और मुस्लिम में ये मरफूअ हदीस रिवायत की गई है :

“तुमसे पिछली उम्मतों में “मुहदिस” हुआ करते थे और अगर मेरी उम्मत में कोई ऐसा शख़्स है तो वोह उमर (रज़ि.) है।”

“मुहदिस” से मुराद है वोह शख़्स जिसे हक़ बात इलहाम कर दी जाए और वोह उसकी ज़बान पर जारी हो जाए, मगर वोह नबी न हो। (तिर्मिज़ी में रिवायतकर्दा एक और हदीस से इस फ़र्माने-नबवी (ﷺ) की मज़ीद वज़ाहत होती है : “यक़ीनन अल्लाह ने उमर की ज़बान पर हक़ जारी कर दिया और उनके दिल में भी (डाल दिया है)।”

(फ़तहुल-बारी, शरह सहीहुल बुख़ारी) (मुतर्जिम)

हजरत उमर रज़ि.पर अल्लाह तआला का ये खुसूसी इनआम आप रज़ि.के सिद्क व इख़लास ही की बदौलत था।

इसी तरह इमाम मुस्लिम रह. अपनी सहीह में रिवायत करते हैं कि हजरत आइशा रज़ि. फ़र्माती हैं :



“रसूलुल्लाह (ﷺ) जब रात को उठते तो अपनी नमाज़ का आगाज़ इन कलिमात से फ़र्माते: ‘अल्लाहुम्म रब्बा जिब्राईला व मिकाईला व इस्राफ़ीला फ़ातिरस्समावाति वलअर्ज़ि आलिमुल-ग़यबि वशहादति अन्त तहकुमू बयना इबादिका फ़ीमा कानू फ़ी ही यख़तालिफ़ून, इहदिनी लिमख़तुलिफ़ फ़ीही मिनल हक्कि बिइज़्जिका इन्नका तहदी मन तशाअु इला सिरातिम-मुस्तक़ीम.’”

ऐ अल्लाह ! (ऐ) जिब्रईल, मीकाईल और इसराफ़ील अलै. के रब! ज़मीन व आसमान को पैदा करने वाले! ग़ैब और हाज़िर का इल्म रखने वाले! आप ही अपने बन्दों के दर्मियान उन मुआमलात का फ़ैसला करेंगे जिनमें वोह आपस में इख़ितलाफ़ किया करते थे। आप ही इस मामले में अपने इज़्ज से हक़ की तरफ़ मेरी रहनुमाई फ़र्मा दीजिए जिसमें लोग इख़ितलाफ़ कर रहे हैं। बिलाशुबहा आप जिसे चाहते हैं सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत दे देते हैं।” (मुस्लिम)

आख़िर में हम ये आयते-मुबारका बतौर दुआ पढ़ेंगे:

رَبَّنَا افْتَحْ بَيْنَنَا وَبَيْنَ قَوْمِنَا بِالْحَقِّ وَأَنْتَ خَيْرُ الْفَاتِحِينَ (89)

“ऐ हमारे रब! हमारे और हमारी क़ौम के दर्मियान हक़ के साथ फ़ैसला फ़रमा दीजिए और आप बेहतरीन फ़ैसला करने वाले हैं।” (सूर : आराफ़ : 89)

और हम सहीह मुस्लिम में मज़कूर ये मासूर दुआ भी पढ़ेंगे जो रसूलुल्लाह (ﷺ) अल्लाह से मांगा करते थे।

‘अल्लाहुम्म मह-दीना लिमख़तलीफ़ फ़ीही मिनल हक्कि बिइज़्जिका इन्नका तहदी मन तशाअु इला सिरातिम-मुस्तक़ीम’ (मुस्लिम)

ऐ अल्लाह ! आप इस मामले में अपने इज़्ज से हक़ की तरफ़ हमारी रहनुमाई फ़रमा दीजिए जिसमें ये लोग इख़ितलाफ़ कर रहे हैं। बिलाशुबहा आप जिसे चाहते हैं सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत दे देते हैं।

ऐ हमारे रब! हमारी मग़्फ़िरत फ़रमा और हमारे उन भाईयों की मग़्फ़िरत फ़रमा जो हमसे पहले ईमान लाए और हमारे दिलों में ईमान वालों के लिए कोई कीना न पैदा फ़रमा ! ऐ हमारे रब ! बेशक तू बहुत शफ़क़त फ़र्माने वाला, बहुत रहम करने वाला है।

ऐ अल्लाह! हमें सआदत की ज़िंदगी और शहादत की मौत अता फ़रमा और क़यामत के दिन हमें सय्यदुल अम्बिया मुहम्मद मुस्तफ़ा (ﷺ) के ग़िरोह में उठा।

सुब्हानकल्लाहुम्म वबिहम्दिका अशहदु ला इलाह इल्ला अन्तः  
अस्तग़फ़िरूका वतुबू इलैक.



## आखिरी बात

इस किताब की आखिरी बात लिखते हुए कलेजा मुंह को आता है, क्योंकि बात है ही ऐसी। कुफ़्र की क्रौमें हर आने वाले दिन में जिस रफ्तार से इस्लाम दुश्मनी में आगे बढ़ रही हैं, ये रफ्तार खतरे की सारी लक़ीरें उबूर (पार) कर चुकी हैं। अमरीका और मरिबी मुमालिक़ खुसूसन डेन्मार्क, नारवे, इटली और फ़्रांस में आए रोज़ तौहीने-कुर्आन, तौहीने-रिसालत (ﷺ) के वाक़ियात जिस तवातिर के साथ सुनने और देखने में आ रहे हैं तारीख़ में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। चालीस मरिबी मुमालिक़ के 70 अख़बारात व ज़राइद और 200 से ज़ाइद नशरियाती चैनल अहानते-रसूलुल्लाह (तौहीने-रिसालत) (ﷺ) के मुरतकिब हुए। क्या ये ग़ैरते-मुस्लिम को मीठी नींद सुलाने की मुहिम का हिस्सा है ... या मस्जिदे-अक्सा की तरफ़ चढ़ाई के मुक़द्दमात हैं?

दूसरी तरफ़ यहूद व नसारा की फ़ौजों ने इस्लाम के मर्कज़ अर्जे-हरमैन और जज़िरातुल-अरब में ख़लीजे-बसरा से लेकर यमन के साहिलों तक, क़तर व बहरीन से लेकर जिद्दाह की फ़िज़ाओं तक और मस्क़त की वादियों से ख़ित्त-ए-शाम के सहाराहों तक में अपने पंजे गाड़ रखे हैं। क्या उनके ये बहरी, बरूी और फ़िज़ाई अड्डे आलमे-इस्लाम पर क़ब्ज़ा और उसे अपना गुलाम बनाकर रखने के अलावा भी किसी और मक़सद के लिए हैं? और इस सारे मंज़र के साथ अज़ीमतर इसराईल के नक़शे को उठाकर देखें तो बात पूरी तरह समझ में आ जाती है। सवाल ये है कि क्या कबूतर के आंखे बन्द करने से विल्ली भाग जाएगी? क्या मुसलमानों के लिए अपने इख़ितलाफ़ात मिटाकर कुफ़्र की इस आलमी यलग़ार, और एक-एक करके बलदे-इस्लाम (मुस्लिम मुमालिक) पर क़ब्ज़ा करने की मुहिम का तौड़ करने का वक्त अब भी नहीं आया? क्या यहूद व नसारा और मुश्रिकीन की ललचाई हुई नज़रें और बढ़ते हुए क़दम, मुस्लिम दानिशवरों और अ़वाम के लिए इब्रत का कोई सामान नहीं रखते?

काशग़र व बुख़ारा के उज़ड़े हुए मदरसे, हस्पानिया व बलक़ान की वीरान मसाजिद, ज़म्मू-कश्मीर व दारुलखुलफ़ा बग़दाद की उदास फ़िज़ाएं और काबुल व बगराम में कुर्आन के जलते थड़कते औराक़ दुनिया में हमारी हमीयत व ग़ैरत, और आख़िर में हमारी फ़लाह व निजात के परवाने पर एक सवालिया निशान ज़रूर लगाते हैं। क्या हमने कभी इस बात पर ग़ौर किया?



# वसीयत, शैख अब्दुल्लाह अज्जाम शहीद रहमतुल्लाह अलैह.

(चन्द मुन्तखब इक़िसाबात)



अल्लाह तआला के बन्द-ए-फ़कीर  
अब्दुल्लाह बिन युसूफ अज्जाम की वसीयत:

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

यकीनन तमाम तअरीफ़ें अल्लाह वहदहु ला शरीक के लिये हैं। हम उसी की हम्द बयान करते हैं, उसी से मदद मांगते हैं और उसी से मग़्फ़िरत तलब करते हैं। हम अपने नुफ़ूस के शर और अपने अअमाल की बुराईयों से अल्लाह की पनाह मांगते हैं। जिसे अल्लाह हिदायत दे उसे कोई गुमराह करने वाला नहीं और जिसे वो गुमराह कर दे उसे कोई हिदायत देने वाला नहीं। मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई अअला नहीं, वो अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं, और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (ﷺ) उसके बन्दे और रसूल हैं। ऐ अल्लाह ! कोई काम आसान नहीं, सिवाय उसके जिसे तू आसान फ़रमा दे और तू चाहे तो ग़म झेलना भी आसान कर देता है अम्मा बअद :

जिहाद की मुहब्बत मेरे जज़बात व अहसासात, मेरे जिस्मो-जान और मेरी ज़िन्दगी के हर मुआमले पर छाई रही है। सूरह-तौबा, जिसकी मुहकम आयात (आयाते-सैफ़) जिहाद के हतमी अहकामात बयान करती हैं और क़यामत तक के लिये इस दीन में जिहाद के अज़ीम मुक़ामो-मर्तेबे का तअय्युन भी किये देती हैं, यह मुबारक सूरत मेरे दिल को ख़ून के आँसू रूलाती और मेरे सीने को शक़ किये देती रही। क्योंकि मैं खुली आँखों से देखता रहा हूँ कि मैं और तमाम मुसलमान क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह जैसे आलीशान फ़रीजे की अदायगी में इन्तिहाई कोताही और ग़फलत का शिकार हैं। इमाम मुस्लिम रह. अपनी सही में रिवायत करते हैं कि अल्लाह तआला का यह फ़रमान कि -

أَجَعَلْتُمْ سِقَايَةَ الْحَاجِّ وَعِمَارَةَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ كَمَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَجَاهَدَ فِي سَبِيلِ اللَّهِ

لَا يَسْتَوُونَ عِنْدَ اللَّهِ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظَّالِمِينَ (19) الَّذِينَ آمَنُوا وَهَاجَرُوا وَجَاهَدُوا فِي سَبِيلِ

اللَّهِ بِأَمْوَالِهِمْ وَأَنْفُسِهِمْ أَكْثَرُ دَرَجَةً عِنْدَ اللَّهِ وَأُولَئِكَ هُمُ الْفَائِزُونَ (20) يُبَشِّرُهُمْ رَبُّهُمْ بِرَحْمَةٍ مِنْهُ

وَرِضْوَانٍ وَجَنَّاتٍ لَهُمْ فِيهَا نَعِيمٌ مُّقِيمٌ (21) خَالِدِينَ فِيهَا أَبَدًا إِنَّ اللَّهَ عِنْدَهُ أَجْرٌ عَظِيمٌ (22)



क्या तुमने हाजियों को पानी पिलाना और मस्जिदे-हराम को आबाद करना उस शख्स के अमल जैसा समझ लिया है जो अल्लाह और यीमे-आखिरत पर ईमान रखता है और अल्लाह की राह में जिहाद करता है? अल्लाह के नज़दीक तो यह लोग बराबर नहीं हैं। और अल्लाह ज़ालिम लोगों को हिदायत नहीं दिया करता। जो लोग ईमान लाए और हिजरत की राह में जानो-माल से जिहाद करते रहे, अल्लाह के यहां तो उन्हीं का दर्जा बड़ा है, और यही लोग कामयाब हैं। उनका रब उन्हें अपनी रहमत और खुशनूदी और ऐसी जन्नतों की बशारत देता है जहां उनके लिये दाईमी नेअमते होंगी, उनमें यह हमेशा रहेंगे, बेशक अल्लाह के पास बड़ा अज़्र है।

(अत्तौबा-19-22)

यह फरमाने-मुबारक उस वक्त नाज़िल हुआ जब कुछ सहाब-ए-किराम रज़ि.में इस बात पर इख़्तिलाफ़ पैदा हो गया कि ईमान लाने के बाद अफ़ज़लतरीन अमल कौनसा है। एक सहाबी ने फ़रमाया, कि मस्जिदे-हराम की आबादकारी अफ़ज़लतरीन अमल है, एक और सहाबी ने फ़रमाया, कि हाजियों को पानी पिलाना अफ़ज़लतरीन अमल है, जब कि एक तीसरे सहाबी ने फ़रमाया, कि जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह अफ़ज़लतरीन अमल है। अल्लाह तआला ने यह आयते-मुबारका नाज़िल फ़रमाकर वाज़ेह फ़ैसला फ़रमा दिया कि जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह, मस्जिदे-हराम को आबाद करने से भी अफ़ज़ल अमल है। बिलाशुब्हा, जिहाद की अफ़ज़लियत के बारे में अब किसी इख़्तिलाफ़ की गुंजाइश नहीं क्योंकि इस आयत का सबबे-नुज़ूल इसी मसअले में सहाबा रज़ि.का आपसी इख़्तिलाफ़ था और इस सबबे-नुज़ूल की तख़सीस या तावील भी मुमकिन नहीं क्योंकि यह नस्स खुद भी अपने मअनी में क़तई है।

अल्लाह तआला हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक रह.पर अपनी खुसूसी रहमते नाज़िल फ़रमाए, जिन्होंने हज़रत फ़जैल बिन अयाज़ रह. को यह अशआर लिख कर भेजे -

ऐ मक्का व मदीना के आबिद ! काश तुम हमें देख लेते तो तुम खुद ही जान लेते कि तुमने इबादत को एक खेल समझ रखा है  
आँसूओं से गाल तर करने वाले को मअलूम हो कि हमारी  
गर्दनें अगर भीगी हैं तो यह हमारे खून से भीगी हैं ।

आपने देखा कि अज़ीम मुहद्दिस व फ़कीह हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक रह.ने हज़रत फ़जैल रह.से क्या फ़रमाया? उन्होंने हरम के साए में बैठकर की जाने वाली अज़ीम इबादत के बारे में फ़रमाया कि अगर एक तरफ़ मुसलमानों की हुरमते पामाल की जा रही हों, खून बहाया जा रहा हो, इज्जते ख़ाक में मिलाई जा रही हों और अल्लाह के दीन को जड़ से उखाड़ने की कोशिशें ज़ोरो-शोर से जारी हों, तो ऐसे में मैदाने-जिहाद का रूख़ करने की



बजाए हरम में बैठकर इबादत करना अल्लाह के दीन के साथ एक संगीन मज़ाक़ है।

जी हाँ! मुसलमानों को कुफ़ार के हाथों ज़िबह होते छोड़ देना और फिर उनका लहू बहते देखकर महज़ लाहौल पढ़ना इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिउन का विद करना, दूर खड़े कफ़े—अफ़सोस मलना, मगर उनकी मदद के लिये एक क़दम ना उठाना, यह अल्लाह के दीन के साथ खेल तमाशा नहीं तो और क्या है?

आख़िर कब तक हम उन झूठे अहसासात और सर्द जज़बात का नुमाईशी इज़हार कर—करके अपने आपको धोखा देते रहेंगे?

**कैसे करार आ गया मुसलमान को ? क्यों वो चैन से बैठा हुआ है ?**

**ऐसे हाल में जब मुसलमान औरतें ज़ालिमो—दुश्मन के शिकंजे में हैं।**

मेरी राय में मुसलमानों की सरज़मीनों पर हमलावर (या क़ाबिज़) दुश्मन को निकालना महज़ फ़र्जे—ऐन ही नहीं, अहमतीरिन फ़र्जे—ऐन है, जैसा कि शैख़ुल—इस्लाम इब्ने—तैइमिया रह. ने फरमाया है — ईमान लाने के बअद, दीनो—दुनिया की बर्बादी के दरप हमलावर दुश्मन को पछाड़ने से बढ़कर और कोई फ़रीज़ा नहीं है।

मेरी राय में, वल्लाहु आलम, आज तारीके—क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह और तारीके—नमाज़, रोज़ा या ज़कात में कोई फ़र्क नहीं।

मेरी राय में, आज दुनिया वाले ना सिर्फ़ अल्लाह रब्बुल आलमीन के सामने जो अब्द यह भारी बोझ उठाए हुए हैं, बल्कि तारीख़ भी उनसे ज़रूर हिसाब लेगी।

मेरी राय में, दअवते—दीन, तसनीफ़ो—तालीफ़ या दीनी तरबियत में मशगूलियत को ना तो तर्के—जिहाद का बहाना बनाया जा सकता है, ना ही अल्लाह की पकड़ से बचाने का ज़रिया।

मेरी राय में, आज ज़मीन पर बसने वाले हर मुसलमान की गर्दन में तर्के—क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह का तौक़ है, हर मुसलमान के कंधों पर बन्दूक छोड़ने के गुनाह का बोझ है। बिलाशुब्हा, जो मुसलमान भी आज इस हाल में जान दे रहा है कि उसके हाथ बन्दूक से, बग़ैर किसी उज़्र के खाली हैं तो वो गुनाह व नाफरमानी की हालत में अल्लाह के पास पहुंच रहा है, क्योंकि वो ऐसे हालात में क़िताल को तर्क किये बैठा है जब माअज़ूरों के सिवा दुनिया के हर मुसलमान पर क़िताल फ़र्जे—ऐन हो चुका है, और फ़र्ज़ उसी हुक्म को कहा जाता है जिसे पूरा करने पर सवाब और तर्क करने पर गुनाह या हिसाब का सामना करना पड़े।

मेरी राय में, वल्लाहु आलम, तर्के—जिहाद के मुआमले में सिर्फ़ अन्धों, लंगड़ों या बीमारों ही का उज़्र कुबूल किया जाएगा या उन कमज़ोरो—मजबूर मदों, औरतों और



बच्चों का जिनके बस में ही नहीं कि वो जिहाद में शिरकत कर सकें, ना ही वो मैदाने-जिहाद तक पहुंचने की राह पाते हैं।

(पस, मजबूरों के सिवा) सबके सब लोग आज तर्कें-जिहादों-क़िताल की वजह से गुनाहगार हो रहे हैं, चाहे यह तर्कें-क़िताल फ़िलीस्तीन या अफ़ग़ानिस्तान के मुआमले में हो या किसी भी इस्लामी सरज़मीन के मुआमले में जहां ग़ासिब कुफ़्रार ने अपने पंजे गाड़ रखे हैं और वो उसे अपने नापाक क़दमों तले रौंद रहे हैं।

**और मेरी राय में,** आज क़ितालो-जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की खातिर निकलने के लिये किसी से इजाज़त मांगने की ज़रूरत नहीं। इन हालात में तो किसी के पास भी किसी दूसरे को इजाज़त देने या मना करने का हक़ बाक़ी नहीं रहा, ना वालिद का अपने बेटे पर, ना शौहर का अपनी बीवी पर (महरम की शर्त के साथ) ना क़र्ज़ख्वाह का मकरूज़ पर, ना उस्ताद और शैख़ का शार्गिंदों पर और ना ही अमीर का मुवरीन पर ऐसा कोई हक़ है।

यह महज़ मेरी ज़ाती राय नहीं, इस बात पर तो इस्लामी तारीख़ के तमाम अदवार (दौर) में उलम-ए-उम्मत का इजमाअ रहा है कि ऐसे हालात में (जब जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाए) औलाद अपने वालिदैन की और बीवी शौहर की इजाज़त के बग़ैर निकलेगी। जो शख़्स भी इस बारे में कोई मुग़ालता फैलाना चाहे यक़ीनन वो ज़ालिम व सरकश है और हिदायते-इलाही के बजाय अपनी ख्वाहिशे-नफ़्स का पैरोकार है। यह मसअला बिल्कुल वाज़ेह, तयशुदा और क़तई है। हर शको-शुब्हे से बाला है, लिहाज़ा इसमें किसी क़िस्म के खेल तमाशे और मनमानी तावीलो-तशरीह की कोई गुंजाइश नहीं।

तीन सूरतों में तो अमीरूल-मोमिनीन से भी इजाज़त नहीं ली जाती:

(1) जब अमीर जिहाद को मुअत्तल कर दे।

(2) जब इजाज़त मांगने से असल मक़सद ही फ़ौत हो जाए, (मसलन, जब यह नज़र आ रहा हो कि अगर इजाज़त मिलने का इन्तज़ार किया गया तो उस तारख़ीर से कोई नुक़सान हो जाएगा या दुश्मन कार्रवाई मुकम्मल करके भाग निकले।)

(3) जब पहले ही पता हो कि अमीर ने इजाज़त नहीं देनी।

**मेरी राय में,** दुनिया भर के मुसलमानों को अफ़ग़ानिस्तान में बहने वाले खून के एक-एक क़तरे और यहां पामाल होने वाली हर-हर इज़्जत का जवाब अल्लाह के दरबार में देना होगा। यक़ीनन, वल्लाहु आलम, पूरी उम्मत-मुस्लिमा उन मज़लूमों के खून में बराबर की शरीक है, इसलिये कि उसके पास अपने मुसलमान बहन-भाईयों के दिफ़ाअ के लिये दरकार असलहा भी नहीं मौजूद है उम्मत के पास वो तबीब (डॉक्टर) भी हैं जो उनका इलाज-मुआलिज करें, फिर मुसलमानों के पास वो माल भी है जिससे उनकी दो वक्त की



रोटी का बन्दोबस्त हो सके, उनके पास वो अआलात (उपकरण) भी हैं जिनसे मुजाहिदीन के लिये मज़बूत मौर्चे और खन्दकें खोदी जाएं, मगर यह फिर भी उनकी नुसरत से हाथ खींचे बैठे हैं

## ऐ मुसलमानों !

जिहाद तुम्हारी ज़िन्दगी है, जिहाद तुम्हारी इज़्जत है और जिहाद ना रहा तो तुम्हारी दास्तां भी ना होगी दास्तानों में।

## ऐ दीन की तरफ़ दअवत देने वालों !

सुन लो कि इस आसमान के नीचे तुम्हारी कोई वक़अत ना होगी जब तक कि तुम असलेह से आरास्ता ना हो जाओ और तवाग़ियत, कुफ़र और ज़ालिमीन को कुचल कर ना रख दो !

जो लोग यह समझते हैं कि अल्लाह का यह मुबारक दीन जिहादो-क़िताल के बग़ैर ही कायम हो जाएगा, ना कोई खून बहेगा, ना कोई लाशें गिरेंगी, यकीनन उन्हें वहम हुआ है और वो इस दीन की फ़ितरत से नावाक़िफ़ हैं इसके मिज़ाज ही को नहीं समझते। इस्लाम की शौकतो-कुव्वत, दुश्मनों पर दाईयाने-इस्लाम की हैबत और उम्मत-मुस्लिमा की इज़्जत हरगिज़ क़िताल के बग़ैर कायम नहीं हो सकती। चुनांचे रसूले-अकरम (ﷺ) का फरमान है : और अल्लाह तआला तुम्हारे दुश्मनों के दिलों से ज़रूर ही तुम्हारी हैबत ख़त्म कर देंगे और तुम्हारे दिलों में वहन (कमज़ोरी) डाल देंगे, तो पूछनेवाले ने पूछा, या रसूलुल्लाह (ﷺ) यह वहन क्या है ? फरमाया, दुनिया की मुहब्बत और मौत से नफ़रत। एक और रिवायत में अल्फ़ाज़ मिलते हैं कि: तुम्हारा क़िताल से नफरत करना

नीज़ अल्लाह तआला फरमाते हैं,

فَقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا تُكَلَّفُ إِلَّا نَفْسَكَ وَحَرِّضِ الْمُؤْمِنِينَ عَسَى

اللَّهُ أَنْ يَكُفَّ بِأَسْرِ الَّذِينَ كَفَرُوا وَاللَّهُ أَشَدُّ بَأْسًا وَأَشَدُّ تَنكِيلًا (84)

पस, तुम जंग करो अल्लाह की राह में, तुम अपनी ज़ात के सिवा किसी के ज़िम्मेदार नहीं, अलबत्ता मोमिनों को लड़ाई पर उभारो, अल्लाह से उम्मीद है कि वो काफ़िरों के ज़ोर को तोड़ देंगे, और अल्लाह सबसे ज़्यादा ज़ोर वाले और सबसे सख़्त सजा देने वाले हैं। (अन-निसा-84)

अगर क़िताल ना हो तो शिर्क हर सिम्त फैल जाए और दुनिया में उसी का ग़ल्बा हा।



इशादि-बारी तआला है:

وَقَاتِلُوهُمْ حَتَّى لَا تَكُونَ فِتْنَةٌ وَيَكُونَ الدِّينُ كُلَّهُ لِلَّهِ (39)

और उनसे जंग करो यहां तक कि फित्ना बाकी ना रहे और दीन सिर्फ अल्लाह के लिये खालिस हो जाए (अनफ़ाल-39)

निज़ामे-दुनिया को दुरुस्त रखने का वाहिद ज़रिया भी जिहाद है।

وَلَوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَفَسَدَتِ الْأَرْضُ وَلَكِنَّ اللَّهَ ذُو

فَضْلٍ عَلَى الْعَالَمِينَ (251)

और अगर अल्लाह इन्सानों के एक गिरोह को दूसरे गिरोह के ज़रिये दफाअ ना करता रहता तो ज़मीन फ़साद से भर जाती लेकिन अल्लाह अहले-आलम पर बड़ा मेहरबान है। (अलबक्रह-251)

यही जिहाद दोनी शआईर और इबादतगाहों के तहफ़ुज़ की वाहिद ज़मानत है :

الَّذِينَ أُخْرِجُوا مِنْ دِيَارِهِمْ بِغَيْرِ حَقٍّ إِلَّا أَنْ يَقُولُوا رَبُّنَا اللَّهُ وَلَوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَهْذَمَتْ صَوَامِعُ وَبِيَعٌ وَصَلَوَاتٌ وَمَسَاجِدُ يُذْكَرُ فِيهَا

اسْمُ اللَّهِ كَثِيرًا وَلَيَنْصُرَنَّ اللَّهُ مَنْ يَنْصُرُهُ إِنَّ اللَّهَ لَقَوِيٌّ عَزِيزٌ (40)

अगर अल्लाह इन्सानों के एक गिरोह को दूसरे के ज़रिये दफाअ ना करता रहता तो (नसारा के) खलवतखाने और गिर्जे, (यहूद के) इबादतखाने और (मुसलमानों की) वो मस्जिदें जिनमें अल्लाह का नाम कसरत से लिया जाता है, सब मिस्मार कर डाली जातीं। और अल्लाह ज़रूर उसकी मदद करेगा जो अल्लाह (के दीन) की मदद करेगा। बेशक, अल्लाह कुव्वतवाला और ग़ल्बे वाला है। (अल-हज-40)

ऐ दीन की तरफ़ दअवत देने वालों !

मौत को ढूँढो, तुम्हें ज़िन्दगी मिलेगी ! देखो ! कहीं तुम्हारी तमन्नाएं तुम्हें किसी फ़रेब में मुब्तला ना कर दें। कहीं वोह धोखेबाज़ इबलीस तुम्हें अल्लाह से गाफ़िल ना कर



दे। खबरदार ! महज़ किताबों के मुतालेअ और नवाफ़िल की कसरत से अपने आपको धोखे मत देना। ऐसा ना हो कि आसान अआमाल में मशगूलियत अज़ीमतर कामों को तुम्हारी निगाहों से ओझल या कमतर कर दे,

وَتَوَدُّونَ أَنَّ غَيْرَ ذَاتِ الشَّوْكَةِ تَكُونُ لَكُمْ (7)

और तुम यह चाहते हो कि ग़ैर मुस्ल्लाह (हथियारविहिन) गिरोह तुम्हें मिल जाए? (सूरह-अनफ़ाल-7)

जिहाद के मुआमले में किसी की बात मत मानो, और खूब समझ लो कि जिहाद में शिरकत के लिये अपने क़ायदे से इजाज़त लेने की ज़रूरत हरगिज़ नहीं। याद रखो! जिहाद तुम्हारी दअवत की बुनियाद है, तुम्हारे दीन का मज़बूत क़िला है और तुम्हारी शरीअत की हिफ़ाज़ती ढ़ाल है।

**ऐ उल्म-ए-दीन !**

उठें और उस नस्ले-नौ की क़यादत संभालें, जिसने अपनी सारी दिलचस्पियों का मरकज़ अपने रब की रज़ा को बना लिया है ! बुज़दिली का मुज़ाहिरा ना करें ! ना इस हक़ीर दुनिया की तरफ़ झुकें । लिल्लाह ! ताग़ूतों की हमनशीनीं से बचें। यह तो सीनों की तारीकी और दिलों की मौत का बाइस है । ताग़ूत की कुर्बतें आपको अहले-ईमान से दूर करने का सबब बनेंगी और उनके कुलूब से अपका अहताराम जाता रहेगा ।

**ऐ मेरे मुसलमान भाईयों !**

बहुत सो लिया तुमने, तुम्हारे इलाकों पर क़ाबिज़ शेर की ख़ाल ओढ़े गीदड़ भी बहुत मज़े कर चुके । किसी शाइर ने क्या खूब कहा है

आख़िर कब तलक ज़िल्लत की नींद सोते रहोगे ? कब यह शेर फिर बेदार होगा ?

क्या गिद्ध तुम्हारा जिस्म यूँही नोचते रहेंगे ? कब यह गुलामी का दौर ख़त्म होगा ?

तुम लोहे की ज़ंजीरों में तो नहीं जकड़े, तुम तो अपनी ही कमज़ोरियों के कैदी हो !

फिर बताओ ना ! कब इस कैद को तोड़ोगे ? आख़िर कब ? बताओ भी !

**ऐ मेरी मुसलमान बहनों !**

ऐशो-आराम और सहलपसन्दी से बचिये, क्योंकि यह चीज़ें जिहाद की दुश्मन और इन्सानी नुफ़ूस के लिये इन्तिहाई मुहलिक (ख़तरनाक) हैं। आसाईशें (ऐशो-आराम की चीज़ें) जमा करने के चक्कर में ना पड़ें, बस आपकी बुनियादी ज़रूरतों का पूरा हो जाना ही आपके लिये काफ़ी होना चाहिए । अपने बच्चों को मुजाहिद बनाएं । उनमें



सख्तकोशी, मर्दानगी, और शुजाअत की सिफात पैदा करें।

अपने घरों को शेरों की कछार बनाएं, मुर्गियों का दड़बा ना बनने दें, क्योंकि मुर्गियां पलकर जितनी भी मोटी हो जाएं बिलआखिर वो खाने वालों के हाथों जिन्ह ही होती हैं। अपनी औलाद के सीनों में हुब्बे-जिहाद की शम्अ रोशन करें, शहसवारी का शौक और मैदाने-जंग की मुहब्बत उनके दिलों में उतारें।

अपने सीने में मुसलमानों की मुश्किलात का अहसास बेदार रखें। कोशिश करें कि हफ्ते में कम से कम एक दिन ऐसा हो जब आपके घर में भी मुजाहिदीन व मुहाजिरीन जैसी जिन्दगी गुजारी जाए। इस दिन सालन के बगैर सिर्फ चाय के चन्द घूंटों के साथ सुखी रोटी खाने का मज़ा जरूर चखें।

### ऐ मुसलमान बच्चों !

अपने आपको बारूद की घन-गरज, जंगी जहाजों के शोर, टैंकों की गड़गड़ाहट और बरसती गोलियों के नगमे सुनने का आदी बनाओ। और खबरदार ! ऐश परस्तों के साज़ और नखरों में पलने वालों के गानों से अपने कान मत आलूदा करो, ना ही मरीजों की तरह बिस्तरों पर पड़े रहने की आदत डालो।

### मेरे मुजाहिद भाईयों !

आप पर लाज़िम है कि राहे-जिहाद पर जमे हुए पुराने मुजाहिदों, बिलखुसूस उसामा बिन लादेन, अबुल हसन अल मदनी, नूरुद्दीन, अबुल हसन अल मुकद्दसी, अबू सय्याफ़ और अबू बुरहान की क़द्र करें। जहां तक अबु माज़ून का तअल्लुक है तो उसे तो मैं बार-बार आजमा चुका हूं। मैंने उन्हें आसमान से बरसते पानी से ज़्यादाह पाकीज़ा और जिहाद के मुआमले में चट्टान की सी मज़बूती का हामिल और इन्तिहाई गय्यूर पाया है। वोह अल्लाह की तरफ़ से मुजाहिदीन के लिये एक तुहफ़ा हैं, खामोशी और मुस्तक़िल मिज़ाजी के साथ जिहाद की खिदमत में लगे हुए हैं और उसके बुनियादी सुतूनों में से एक हैं। उन सब साथियों की ग़लतियों से चश्मपोशी करो और उनकी क़द्रो-मन्ज़िलत की हिफ़ाज़त करो। भाई अबुल हसन मदनी के मुक़ामो-मर्तबे और जिहाद में उनके ज़बरदस्त किरदार को हमेशा याद रखो। अबू हाजिर की नसीहतों को ग़ौर से सुना करो और तुम्हें नमाज़ भी पढ़ाया करें, अल्लाह ने उन्हें रिक्कते-क़ल्ब और खुशूअ से नवाज़ा है।

मैं ढेरों दुआएं करता हूं अपने मुजाहिद भाई अबू अब्दुल्लाह उसामा बिन मुहम्मद बिन लादेन के लिये जिन्होंने अपने ज़ाती माल से जिहाद की भरपूर खिदमत की और “मकतबुल-खिदमात” के अख़राजात का बोझ उठाया। मेरी दुआ है कि अल्लाह उनके अहलो-अयाल और उनके माल में बरकत डाले और हमें उन जैसे और बहुत से साथी



अता करे। मैं अल्लाह को गवाह बनाकर कहता हूँ कि मुझे पूरे आलमे-इस्लाम में उसामा (शहीद रहमतुल्लाह अलैह) जैसा कोई दूसरा नज़र नहीं आता। इसीलिये मेरी दुआ है कि अल्लाह आपके ईमान और आपके माल की हिफ़ाज़त फ़र्माए और आपकी ज़िन्दगी को बाबरकत बना (आमीन)

व सुब्हान कल्लाहुम्म वबिहम्दिक् व अशहदु ला इलाह इल्ला अन्ता अस्तग़फ़िरूक  
वअतुबू इलैक.

मंगल-3, शाअबान, 1406 हिजरी

(22-4-1986)

अब्दुल्लाह बिन युसूफ अज़्जाम (शहीद रहमतुल्लाह अलैह.)

(2 मई 2011 को अल्लाह ने शैख अब्दुल्लाह अज़्जाम शहीद रह. की शैख उसामा के ईमान पर खात्मे और ज़िन्दगी के बाबरकत होने की दुआ को इस तरह पूरा किया जिसे कि सारा आलमे-इस्लाम देख रहा है कि उनके मिशन को लेकर कितने लोग उठ खड़े हुए हैं।)



# शहीद अब्दुल्लाह अज्जाम रहमतुल्लाह अलैह

अजीब एक शख्स था, जवारे-अकदस से उठा,  
जिहाद का अलम लिये, तो उसकी एक पुकार पे,  
अरबो-अजम निकल पड़े ! कई मुहाज शौक फिर, यहां-वहां पे सज गए !  
वो शख्स कोहे-अज्म था, वक्रारे-जमो-बज्म था,  
वो दोस्तों के दरमियान कह रहा था एक दिन, जिहाद पर तो वो लिखे,  
जो घन-गरज में तोप की, मुहाज का मजा चखे,  
कहा जो उसने, कर गया, कयादतों का एक खला,  
लहू से अपने भर गया, अजब शख्स था कि जो,  
कलम की लाज रख गया, सरो पे आ गई के वो,  
और अब उधर, कदम जो उसके नक्श हैं,  
वो काफिलों की रहगुजर, काफिले ही काफिले,  
जमीन के शिकों-वस्त से, यह सिम्त गर्ब काफिले !  
और अब कोई यह काफिले, रोक कर दिखाए तो !  
दलीले-हक के रूबरू, दलील कोई लाए तो !  
मुक्राबिल आफताब के दिया जरा जलाए तो !

हमारे अलफ़ाज़ शम्अ की लौ की मानिन्द हैं जो बिलआखिर बुझ ही जाती है और यह अलफ़ाज़ बेजान ही रहते हैं, यहां तक कि जब हम दीन पर मर मिटते हैं, तो यही अलफ़ाज़ ज़िन्दा हो जाते हैं और ज़िन्दा इन्सानों के दरमियान अमर हो जाते हैं। (शहीद अब्दुल्लाह अज्जाम रह.)